ISSN 2278-1633ANTIM JAN

गांधी दर्शन
अंतिम जन

वर्ष-6, अंक: 12, संख्या-50 मई 2024 मूल्य: ₹20

गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति संग्रहालय

समिति के दो परिसर हैं- गांधी स्मृति और गांधी दर्शन।

गांधी स्मृति, 5, तीस जनवरी मार्ग, नई दिल्ली पर स्थित है। इस भवन में उनके जीवन के अंतिम 144 दिनों से जुड़े दुर्लभ चित्र, जानकारियाँ और मल्टीमीडिया संग्रहालय (Museum) है। जिसमें प्रवेश निःशुल्क है।

दूसरा परिसर गांधी दर्शन राजघाट पर स्थित है। यहाँ 'मेरा जीवन ही मेरा संदेश' प्रदर्शनी, डोम थियेटर और राष्ट्रीय स्वच्छता केंद्र संग्रहालय (Museum) है।

दोनों परिसर के संग्रहालय प्रतिदिन प्रातः 10 से शाम 6:30 तक खुलते हैं।
(सोमवार एवं राजपत्रित अवकाश को छोड़ कर)

ISSN 2278A 1633ANTIM JAN

गांधी दर्शन
अंतिम जन

वर्ष-6, अंक: 12, संख्या-50
मई 2024

संरक्षक
विजय गोयल
उपाध्यक्ष, गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति

प्रधान सम्पादक
डॉ. ज्वाला प्रसाद

सम्पादक
प्रवीण दत्त शर्मा
पंकज चौबे

परामर्श
वेदाभ्यास कुंडू

प्रबन्ध सहयोग
शुभांगी गिरधर

आवरण व रेखांकन
संजीव शाश्वती

मूल्य : ₹ 20
वार्षिक सदस्यता : ₹ 200
दो साल : ₹ 400
तीन साल : ₹ 500

गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति
गांधी दर्शन, राजघाट, नई दिल्ली-110002
फोन : 011-23392796
ई-मेल : antimjangsds@gmail.com
2010gsds@gmail.com

गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति, राजघाट,
नई दिल्ली-110002, की ओर से मुद्रित एवं प्रकाशित।

लेखकों द्वारा उनकी रचनाओं में प्रस्तुत विचार एवं दृष्टिकोण उनके अपने हैं, गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति, राजघाट, नई दिल्ली के नहीं।
समस्त मामले दिल्ली न्यायालय में ही विचाराधीन।

मुद्रक
पोहोजा प्रिंट सोल्यूशंस प्रा. लि., दिल्ली - 110092

इस अंक में

धरोहर
घर में परिवर्तन और बालशिक्षा-*मोहनदास करमचंद गांधी* 5
भाषण
भगवान महावीर निर्वाण महोत्सव पर प्रधानमंत्री के संबोधन -*श्री नरेंद्र मोदी* 9
विशेष
व्यक्तित्व की बुनियाद-*काका कालेलकर* 12
निबंध
मजदूरी और प्रेम-*सरदार पूर्ण सिंह* 18
चिंतन
शाश्वत नैतिकता की ओर-*सच्चिदानंद सिन्हा* 26
विमर्श
महात्मा गांधी की विश्व-दृष्टि में मितव्ययिता-*डॉ० रवीन्द्र कुमार* 32
गांधी और धर्म दृष्टि-*डॉ इन्द्र नारायण रमण* 35
जीवनशैली, आध्यत्मिकता और वैचारिकता 'अब वैश्विक स्वास्थ्य का आधार'-*अमित त्यागी* 38 38
कविता
सुमित्रानंदन पंत की कविताएं 41
रेखा शाह आरबी 45
फोटो में गांधी 47
बाल कहानी
डाक बाबू का प्यार-*प्रकाश मनु* 48
कविता
बद्री प्रसाद वर्मा 'अनजान' 51
कहानी
मोटेराम शास्त्री - प्रेमचंद 52
प्रेरक प्रसंग 56
किताब
नोआखाली -एक व्यक्ति की विजयी सेना-*अभिषेक मुखर्जी* 57
गांधी क्विज-2 60
बच्चों के लिए पहेली 61
गतिविधियाँ 62

'अंतिम जन' और गांधी

गांधीजी के मन में समाज के निचले तबके के उत्थान की चिंता सदैव रहती थी। उनका एक प्रसिद्ध कथन है, जिसे गांधीजी का जंतर कहा जाता है। जिसमें उन्होंने कहा है-''जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शकल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा''?

इस जंतर के माध्यम से बापू ने समाज के अंतिम पायदान पर खड़े व्यक्ति की सेवा करने और उनके जीवनस्तर को ऊपर उठाने का संदेश जनसाधारण को दिया। गांधीजी के मन में मजदूर, पिछड़े, कमजोर तबके के प्रति बड़ी हमदर्दी थी। वे चाहते थे कि देश में सबका दर्जा समान हो। 10 नवंबर 1946 को 'हरिजन सेवक' में उन्होंने लिखा, 'हर व्यक्ति को अपने विकास और अपने जीवन को सफल बनाने के समान अवसर मिलने चाहिए। यदि अवसर दिये जाएं तो हर आदमी समान रूप से अपना विकास कर सकता है'। उन्होंने मजदूर और आदिवासियों को अपने रचनात्मक कार्यक्रम में भी शामिल किया।

चम्पारण सत्याग्रह की सफलता के बाद गांधीजी का दूसरा सफल सत्याग्रह, 1918 में अहमदाबाद मिल मजदूरों की हड़ताल का नेतृत्व था। हड़ताल को देखते हुए मिल मालिक 20 प्रतिशत भत्ता देने को राजी हो गए।

महात्मा गांधी के दर्शन में गरीबों, श्रमिकों, किसान, मजदूर आदि छोटे तबके के लोगों के लिए विशेष चिंता थी। गांधीजी इस वर्ग को मेहनतकश और देश की तरक्की का असली सूत्रधार मानते थे। इसलिए इनके हितों की खूब पैरवी करते थे। अपनी पुस्तक 'हिंद स्वराज' में उन्होंने मशीनीकरण का विरोध किया है, उस विरोध में मजदूर हित छिपा है। गांधीजी का मानना था कि अनावश्यक मशीनीकरण से अनेक श्रमिक बेरोजगार हो जाएंगे। इसलिए भारत जैसे देश में अंधाधुंध मशीनीकरण गलत है। वास्तव में महात्मा गांधी श्रमिकों और कमजोर लोगों के सबसे बड़े पैरोकार थे।

अंतिम जन का मई अंक आपके समक्ष प्रस्तुत है। इस बार हमने महात्मा गांधी और समकालीन नेताओं के विचारों के अतिरिक्त पंचतंत्र की कहानियां, व्यग्ंय और अन्य साहित्यिक सामग्री भी संकलित की है। आशा है आपको पसंद आएगा। पत्रिका की बेहतरी के लिए आपके सुझाव भी आमंत्रित हैं। कृपया अपने विचारों से हमें अवश्य अवगत करवाएं।

विजय गोयल

भारतीय सभ्यता का अभिन्न अंग हमारी नदियाँ

नदियाँ भारतीय संस्कृति और सभ्यता का अभिन्न अंग हैं। हमारी सभ्यता का विकास नदियों किनारे ही हुआ है। इसलिए भारतीय सभ्यता को गंगा-जमनी सभ्यता जैसी संज्ञाएं दी जाती हैं। नदियाँ हमें अपने निर्मल जल से पोषण प्रदान करती हैं। गंगा जैसी नदियाँ भारत के दो हजार किलोमीटर से भी अधिक क्षेत्र को अपनी कृपा प्रदान करती हैं।

गंगा व अन्य नदियों की स्वच्छता के लिए गांधीजी भी बहुत चिंतित रहते थे और लोगों से नदियों को स्वच्छ रखने की अपील समय-समय पर करते रहे। गांधीजी 1915 में जब हरिद्वार गए तो प्रकृति की सुंदरता देखकर बड़े प्रसन्न हो गए। लेकिन गंगा किनारे मानव द्वारा फैलाई गंदगी से उनकी प्रसन्नता काफूर हो गई। नाराज होकर वे लिखते हैं-''ऋषिकेश और लक्ष्मण झूले के प्राकृतिक दृश्य मुझे बहुत पसंद आए। परन्तु दूसरी ओर मनुष्य की कृति को वहां देख चित्त को शांति न हुई। हरिद्वार की तरह ऋषिकेश में भी लोग रास्तों को और गंगा के सुन्दर किनारों को गन्दा कर डालते थे। गंगा के पवित्र पानी को बिगाड़ते हुए उन्हें कुछ संकोच न होता था। दिशा-जंगल जाने वाले आम जगह और रास्तों पर ही बैठ जाते थे, यह देख कर मेरे चित्त को बड़ी चोट पहुंची।''

महात्मा गांधी केवल हरिद्वार ही नहीं अन्य पावनस्थलों पर भी गंगा की गंदगी को लेकर चिंतित रहते थे और लोगों को समझाते रहते थे। जब उन्हें पता चला कि इलाहाबाद में भी नगरपालिका गंदे नाले का पानी गंगा में डाल रहा है। तब उन्होंने इसका कड़ा विरोध किया और कहा कि इस संबंध में कुछ कर सकने में बोर्ड की असमर्थता देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य होता है।

वास्तव में नदियाँ हमारी संस्कृति की परिचायक हैं। इनकी स्वच्छ और निर्मल धारा बनी रहे, इसके लिए सरकारी प्रयास ही काफी नहीं। बल्कि आम जनता को भी प्रयास करना होगा। हम सुनिश्चित करें, कि नदी किनारे बने तीर्थों पर जाते समय उनकी गरिमा और स्वच्छता का ध्यान रखें। तभी स्वच्छ नदियों का गांधी का सपना साकार हो सकेगा।

'अंतिम जन' के मई अंक में सरदार पूर्ण सिंह का आलेख 'मजदूरी और प्रेम' पठनीय है। इसके अतिरिक्त काका कालेलकर का व्यक्तित्व की बुनियाद, सच्चिदानंद सिन्हा लिखित आलेख 'शाश्वत नैतिकता की ओर' व डॉ. इंद्रनारायण रमण का गांधी और धर्मदृष्टि भी उल्लेखनीय है।

डॉ. ज्वाला प्रसाद
निदेशक

आपके ख़त

साहित्य का असर

'अंतिम जन' पत्रिका में प्रकाशित आलेखों में विविधता ही इस पत्रिका की खूबसूरती है। महात्मा गांधी के विचारों पर कई पत्रिकाएं अलग-अलग भाषा में प्रकाशित होती हैं। पर जिस प्रकार यह पत्रिका अपने विचार को रखती है वह सबके लिए अनुकरणीय है। आज कल बच्चों के लिए विशेष कॉलम देख रहा हूं। यह प्रयास और बदलाव भी बहुत ही सकारात्मक है। गांधी विचार बच्चों तक ज्यादा से ज्यादा पहुंचनी चाहिए। जिसके लिए संस्थान को अलग से भी प्रयास करना चाहिए। या ऐसा कर रही होगी जिसकी समुचित जानकारी मुझे नहीं है। मैंने गांधी जी को स्वंय समझने की कोशिश करता हूं। इसका असर मेरे 15 वर्षीय पुत्र पर भी दिखता है। गांधी जी को लेकर उसके मन में बालपन से ही ढेरों सवाल उभरता रहा । यथा संभव या यथा बुद्धि मैं उसका उत्तर देता रहा। आज उसके लिए गांधी जी उसके नायक हैं।

यह छोटी सी बात आपके समक्ष प्रस्तुत करने का उद्देश्य यह है कि बच्चें हमारे भविष्य हैं। इनको लेकर विशेष तरह की योजना बनाई जा सकती है। गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति अलग से बच्चों के लिए पत्रिका प्रकाशित करें। कुछ विशेष पर ठोस कार्यक्रम आयोजित हो।

इस पत्रिका का हमारे घर में विशेष स्थान है। पत्रिका परिवार को कोटि कोटि नमन।

महेश
विनोद नगर, दिल्ली

आप भी पत्र लिखें। सर्वश्रेष्ठ पत्र को पुरस्कृत कर, उपहार दिया जाएगा।

विनम्र श्रद्धांजलि

'राष्ट्रपिता' देश का गौरव बापू
अहिंसा के पुजारी बापू
दुनिया की समझदारी बापू
हिंसा के विरोधी बापू
स्वतंत्रता सेनानियों के शीर्ष बापू
निर्धनों का सहारा बापू
कुरीतियों का निवारण बापू
अहमदाबाद के 'कोचरब' क्षेत्र में
स्थापित प्रथम आश्रम बापू
बिहार के चंपारण का सत्याग्रह बापू
'तिनकठिया' में जबरन नील की खेती,
कराने का एकमात्र किसानों का आश्रय बापू
विदेशों में बनी वस्तुओं का बहिष्कार कर,
स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने का आंदोलन बापू
हर क्षेत्र में स्त्रियों की भागीदारी बापू
भारतीयों के दृढ़ निश्चय का आह्वान बापू
सत्य के मार्ग का प्रोत्साहन बापू
ब्रिटिशों के जड़ को हिलाने वाले
महान नेता बापू
'भारत छोड़ों' व 'करो या मरो' का नारा बापू
केवल इतनी ही नहीं हैं आपकी उपाधि बापू
भारत की शान बापू
विश्व में हैं पहचान बापू
आज भी शहीदों की याद में,
जलती हैं 'अमर जवान ज्योति' बापू
राजघाट की समाधि बापू!

पूजा गुप्ता
दिल्ली विश्वविद्यालय

घर में परिवर्तन और बालशिक्षा

मोहनदास करमचंद गांधी

डरबन में मैंने जो घर बसाया था, उसमें परिवर्तन तो किए ही थे। खर्च अधिक रखा था, फिर भी झुकाव सादगी की ओर ही था। किंतु जोहानिस्बर्ग में 'सर्वोदय' के विचारों ने अधिक परिवर्तन करवाए।

बारिस्टर के घर में जितनी सादगी रखी जा सकती थी, उतनी तो रखनी शुरू कर ही दी। फिर भी कुछ साज-सामान के बिना काम चलाना मुश्किल था। सच्ची सादगी तो मन की बढ़ी। हर एक काम अपने हाथों करने को शौक बढ़ा और बालकों को भी उसमें शरीक करके कुशल बनाना शुरू किया।

बाजार की रोटी खरीदने के बदले कूने की सुझाई हुई बिना खमीर की रोटी हाथ से बनानी शुरू की। इसमें मिल का आटा काम नहीं देता था। साथ ही मेरा यह भी खयाल रहा था मिल में पिसे आटे का उपयोग करने की अपेक्षा हाथ से पिसे आटे का उपयोग करने में सादगी, आरोग्य और पैसा तीनों की अधिक रक्षा होती है। अतएव सात पौंड खर्च करके हाथ से चलाने की एक चक्की खरीद ली। उसका पाट वजनदार था। दो आदमी उसे सरलता से चला सकते थे, अकेले को तकलीफ होती थी। इस चक्की को चलाने में पोलाक, मैं और बालक मुख्य भाग लेते थे। कभी-कभी कस्तूरबाई भी आ जाती थी, यद्यपि उस समय वह रसोई बनाने में लगी रहती थी। मिसेज पोलाक के आने पर वे भी इसमें सम्मिलित हो गई। बालकों के लिए यह कसरत बहुत अच्छी सिद्ध हुई। उनसे कोई काम कभी जबरदस्ती नहीं करवाया। वे सहज ही खेल समझ कर चक्की चलाने आते थे। थकने पर छोड़ देने की उन्हें स्वतंत्रता थी। पर न जाने क्या कारण था कि इन बालकों ने अथवा दूसरे बालकों ने, जिनकी पहचान हमें आगे चलकर करनी है, मुझे तो हमेशा बहुत ही काम दिया है। मेरे भाग्य में टेढ़े स्वभाव के बालक भी थे, अधिकतर बालक सौंपा हुआ काम उमंग के साथ करते थे। 'थक गए' कहने वाले उस युग के थोड़े ही बालक मुझे याद है।

घर साफ रखने के लिए एक नौकर था। वह घर के आदमी की तरह रहता था और उसके काम में बालक पूरा हाथ बँटाते थे। पाखाना साफ करने के लिए तो म्युनिसिपैलिटी का नौकर आता था, पर पाखाने के कमरे को

बाजार की रोटी खरीदने के बदले कूने की सुझाई हुई बिना खमीर की रोटी हाथ से बनानी शुरू की। इसमें मिल का आटा काम नहीं देता था। साथ ही मेरा यह भी खयाल रहा था मिल में पिसे आटे का उपयोग करने की अपेक्षा हाथ से पिसे आटे का उपयोग करने में सादगी, आरोग्य और पैसा तीनों की अधिक रक्षा होती है....

साफ करने का काम नौकर को नहीं सौंपा जाता था। उससे वैसी आशा भी नहीं रखी जाती थी। यह काम हम स्वयं करते थे और बालकों को तालीम मिलती थी। परिणाम यह हुआ कि शुरू से ही मेरे एक भी लड़के को पाखाना साफ करने की घिन न रही और आरोग्य के साधारण नियम भी वे स्वाभाविक रूप से सीख गए। जोहानिस्बर्ग में कोई बीमार तो शायद ही कभी पड़ता था। पर बीमारी का प्रसंग आने पर सेवा के काम में बालक अवश्य रहते थे और इस काम को खुशी से करते थे।

यदि मैं उन्हें अक्षर ज्ञान कराने के लिए एक घंटा भी नियमित रूप से बचा सका होता, तो मैं मानता कि उन्हें आदर्श शिक्षा प्राप्त हुई है। मैंने ऐसा आग्रह नहीं रखा, इसका दु:ख मुझे है और उन्हें दोनों को रह गया है। सबसे बड़े लड़के ने अपना संताप कई बार मेरे और सार्वजनिक रूप में भी प्रकट किया है। दूसरों ने हृदय की उदारता दिखाकर इस दोष को अनिवार्य समझकर दरगुजर कर दिया है। इस कमी के लिए मुझे पश्चाताप नहीं है, अथवा है तो इतना ही कि मैं आदर्श पिता न बन सका।

मैं यह तो नहीं कहूँगा कि बालकों के अक्षर ज्ञान के प्रति मैं लापरवाह रहा। पर यह ठीक है कि मैंने उसकी कुरबानी करने में संकोच नहीं किया। और इस कमी के लिए मेरे लड़कों को मेरे विरुद्ध शिकायत करने का कारण रह गया है। उन्होंने कभी-कभी अपना असंतोष भी प्रकट किया है। मैं मानता हूँ कि इसमें किसी हद तक मुझे अपना दोष स्वीकार करना चाहिए। उन्हें अक्षर ज्ञान कराने की मेरी इच्छा बहुत थी, मैं प्रयत्न भी करता था, किंतु इस काम में हमेशा कोई न कोई विघ्न आ जाता था। उनके लिए घर पर दूसरी शिक्षा की सुविधा नहीं की गई थी, इसलिए मैं उन्हें अपने साथ पैदल दफ्तर तक ले जाता था। दफ्तर ढाई मील दूर था, इससे सुबह शाम मिलाकर कम से कम पाँच मील की कसरत उन्हें और मुझे हो जाती थी। रास्ता चलते हुए मैं उन्हें कुछ न कुछ सिखाने का प्रयत्न करता था, पर यह भी तभी होता था, जब मेरे साथ दूसरा कोई चलनेवाला न होता। दफ्तर में वे मुवक्किलों व मुहर्रिरों के संपर्क में आते थे। कुछ पढ़ने को देता तो वे पढ़ते थे। इधर उधर घूम फिर लेते थे और बाजार से मामूली सामान खरीदना हो तो खरीद लाते थे। सबसे बड़े हरिलाल को छोड़कर बाकी सब बालकों की परवरिश इसी प्रकार हुई। हरिलाल देश में रह गया था। यदि मैं उन्हें अक्षर ज्ञान कराने के लिए एक घंटा भी नियमित रूप से बचा सका होता, तो मैं मानता कि उन्हें आदर्श शिक्षा प्राप्त हुई है। मैंने ऐसा आग्रह नहीं रखा, इसका दु:ख मुझे है और उन्हें दोनों को रह गया है। सबसे बड़े लड़के ने अपना संताप कई बार मेरे और सार्वजनिक रूप में भी प्रकट किया है। दूसरों ने हृदय की उदारता दिखाकर इस दोष को अनिवार्य समझकर दरगुजर कर दिया है। इस कमी के लिए मुझे पश्चाताप नहीं है, अथवा है तो इतना ही कि मैं आदर्श पिता न बन सका। किंतु मेरी यह राय है कि उनके अक्षर ज्ञान की कुरबानी भी मैंने अज्ञान से ही क्यों न हो, फिर भी सद्भावपूर्वक मानी हुई सेवा के लिए ही की है। मैं यह कह सकता हूँ कि उनके चरित्र निर्माण के लिए जितना कुछ आवश्यक रूप से करना चाहिए था, वह करने में मैंने कही भी त्रुटि नहीं रखी है। और मैं मानता हूँ कि हर माता पिता का यह अनिवार्य कर्तव्य है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि अपने इस परिश्रम के बाद भी मेरे बालकों के चरित्र में जहाँ त्रुटि पाई जाती है, वहाँ वह पति-पत्नी के नाते हमारी त्रुटियों का ही प्रतिबिंब है।

जिस प्रकार बच्चों को माता पिता की सूरत-शकल विरासत में मिलती है, उसी प्रकार उनके गुण-दोष भी उन्हें विरासत में मिलते है। अवश्य ही आसपास के वातावरण के कारण इसमें अनेक प्रकार की घट-बट होती है, पर मूल पूँजी तो वही होती है, जो बाप- दादा आदि से मिलती है। मैंने देखा है कि कुछ बालक अपने को लगता था। उनकी दलील यह थी कि मैं बच्चों के भविष्य को बिगाड़ रहा हूँ। वे मुझे आग्रह पूर्वक समझाया करते थे कि यदि बालक अंग्रेजी के समान व्यापक भाषा को सीख ले, तो संसार में चल रही जीवन की होड़ में वे एक मंजिल को सहज ही पार कर सकते हैं। उनकी यह दलील मेरे गले न उतरती

थी। अब मुझे यह याद नहीं है कि अंत में मेरे उत्तर से उन्हें संतोष हुआ था या मेरा हठ देखकर उन्होंने शांति धारण कर ली थी। इस संवाद को लगभग बीस वर्ष हो चुके है, फिर भी उस समय के मेरे ये विचार आज के अनुभव से अधिक दृढ़ हुए है, और यद्यपि मेरे पुत्र अक्षर ज्ञान में कच्चे रह गए है, फिर भी मातृभाषा का जो साधारण ज्ञान उन्हें आसानी से मिला है, उससे उन्हें और देश को लाभ ही हुआ है और इस समय वे देश में परदेशी जैसे नहीं बन गए है। वे द्विभाषी तो सहज ही हो गए, क्योंकि विशाल अंग्रेज मित्र मंडली के संपर्क में आने से और जहाँ विशेष रूप से अंग्रेजी बोली जाती है ऐसे देश में रहने से वे अंग्रेजी भाषा बोलने और उसे साधारणत: लिखने लग गए।

घर में सत्याग्रह

मुझे जेल का पहला अनुभव सन् 1908 में हुआ। उस समय मैंने देखा कि जेल में कैदियों से जो कुछ नियम पलवाये जाते हैं, संयमी अथवा ब्रह्मचारी को उनका पालन स्वेच्छापूर्वक करना चाहिए। जैसे, कैदियों को सूर्यास्त से पहले पाँच बजे तक खा लेना होता है। उन्हें- हिन्दुस्तानी और हब्शी कैदियों को- चाय या कॉफी नहीं दी जाती। नमक खाना हो तो अलग से लेना होता है। स्वाद के लिए तो कुछ खाया ही नहीं जा सकता।

जब मैंने जेल के डॉक्टर से हिन्दुस्तानियों के लिए 'करी पाउडर' माँगा और नमक बनती हुई रसोई में ही डालने की बात कही, तो वे बोले, 'यहाँ आप लोग स्वाद का आनन्द लूटने के लिए नहीं आये हैं। आरोग्य की दृष्टि से 'करी पाउडर' की कोई आवश्यकता नहीं है। आरोग्य के विचार से नमक ऊपर से लें या पकाते समय रसोई में डालें, दोनों एक ही बात है।'

वहाँ तो बड़ी मेहनत के बाद हम आखिर जरूरी परिवर्तन करा सके थे। पर केवल संयम की दृष्टि से देखें, तो दोनों प्रतिबंध अच्छे ही थे। ऐसा प्रतिबन्ध जब जबरदस्ती लगाया जाता है, तो वह सफल नहीं होता। पर स्वेच्छा से पालन करने पर ऐसा प्रतिबन्ध बहुत उपयोगी सिद्ध होता है। अतएव जेल से छूटने के बाद मैंने ये परिवर्तन भोजन में तुरन्त किये। भरसक चाय पीना बंद किया और शाम को जल्दी खाने की आदत डाली, जो आज स्वाभाविक हो गयी है।

किन्तु एक ऐसी घटना घटी, जिसके कारण मैंने नमक का त्याग किया, जो लगभग दस वर्ष तक अखण्ड रूप से कायम रहा। अन्नाहार-संबंधी कुछ पुस्तकों में मैंने पढ़ा था कि मनुष्य के लिए नमक खाना आवश्यक नहीं है और न खानेवाले को आरोग्य की दृष्टि से लाभ ही होता है। यह तो मुझे सूझा ही था कि नमक न खाने से ब्रह्मचारी को लाभ होता है। मैंने यह भी पढ़ा और अनुभव किया था कि कमजोर शरीरवाले को दाल न खानी चाहिए। किन्तु मैं उन्हें तुरन्त छोड़ न सका था। दोनों चीजें मुझे प्रिय थी। यद्यपि उक्त शस्त्रक्रिया के बाद कस्तूरबाई का रक्तस्राव थोड़े समय के लिए बंद हो गया था, पर अब वह फिर शुरू हो गया और किसी प्रकार बंद ही न होता था। अकेले पानी के उपचार व्यर्थ सिद्ध हुए। यद्यपि पत्नी को मेरे उपचारों पर विशेष श्रद्धा नहीं थी, तथापि उनके लिए तिरस्कार भी नहीं था। दूसरी दवा करने का आग्रह न था। मैने उसे नमक और दाल छोड़ने के लिए मनाना शुरू किया। बहुत मनाने पर भी, अपने कथन के समर्थन में कुछ-न-कुछ पढ़कर सुनाने पर भी, वह मानी नहीं। आखिर उसने कहा: 'दाल और नमक छोड़ने को तो कोई आपसे कहे, तो आप भी न छोड़ेंगे।' मुझे दु:ख हुआ और हर्ष भी हुआ। मुझे अपना प्रेम उँड़ेलने का अवसर मिला। उसके हर्ष में मैंने तुरन्त ही कहा, 'तुम्हारा यह खयाल गलत है। मुझे बीमारी हो और वैद्य इस चीज को या दूसरी किसी चीज को छोड़ने के लिए कहे, तो मैं अवश्य छोड़ दूँ। लेकिन जाओ, मैंने तो एक साल के लिए दाल और नमक दोनों छोड़े। तुम छोड़ो या न छोड़ो, यह अलग बात है।'

पत्नी को बहुत पश्चात्ताप हुआ। वह कह उठी, 'मुझे माफ कीजिए। आपका स्वभाव जानते हुए भी मैं कहते कह गयी। अब मैं दाल और नमक नहीं खाऊँगी, लेकिन आप अपनी बात लौटा लें। यह तो मेरे लिए बहुत बड़ी सजा हो जाएगी।'

मैंने कहा, 'अगर तुम दाल और नमक छोड़ोगी, तो अच्छा ही होगा। मुझे विश्वास है कि उससे तुम्हें लाभ होगा। पर मैं ली हुई प्रतिज्ञा वापस नहीं ले सकूँगा। मुझे तो इससे लाभ ही है। मनुष्य किसी भी निमित्त से संयम क्यों न पाले, उसमें उसे लाभ ही है। अतएव तुम मुझसे आग्रह न करो। फिर मेरे लिए भी यह एक परीक्षा हो जाएगी और इन दो पदार्थों को छोड़ने का जो निश्चय तुमने किया है, उस पर दृढ़ रहने में तुम्हें मदद मिलेगी।' इसके बाद मुझे उसे मनाने की जरूरत तो रही ही नहीं। 'आप बहुत हठीले हैं। किसीकी बात मानते ही नहीं।' कहकर और अंजलि-भर आँसू बहाकर वह शान्त हो गयी। मैं इसे सत्याग्रह का नाम देना चाहता हूँ और इसको अपने जीवन की मधुर स्मृतियों में से एक मानता हूँ। इसके बाद कस्तूरबाई की तबीयत खूब संभली। इसमें नमक और दाल का त्याग कारणरूप था या वह किस हद तक कारणरूप था, अथवा उस त्याग से उत्पन्न आहार-संबंधी अन्य छोटे-बड़े परिवर्तन कारणभूत थे, या इसके बाद दूसरे नियमों का पालन कराने में मेरी पहरेदारी निमित्तरूप थी, अथवा उपर्युक्त प्रसंग से उत्पन्न मानसिक उल्लास निमित्तरूप था-सो मैं कह नहीं सकता। पर कस्तूरबाई का क्षीण शरीर फिर पनपने लगा, रक्तस्राव बंद हुआ और 'वैद्यराज' के रूप में मेरी साख कुछ बढ़ी।

स्वयं मुझ पर तो इन दोनों के त्याग का प्रभाव अच्छा ही पड़ा। त्याग के बाद नमक अथवा दाल की इच्छा तक न रही। एक साल का समय तो तेजी से बीत गया। मैं इन्द्रियों की शान्ति का अधिक अनुभव करने लगा और मन संयम को बढ़ाने की तरफ अधिक दौड़ने लगा। कहना होगा कि वर्ष की समाप्ति के बाद भी दाल और नमक का मेरा त्याग ठेठ देश लौटने तक चालू रहा। केवल एक बार सन् 1914 में विलायत में नमक और दाल खायी थी। पर इसकी बात और देश वापस आने पर ये दोनों चीजें फिर किस तरह लेनी शुरू की इसकी कहानी आगे कहूँगा।

नमक और दाल छुड़ाने के प्रयोग मैंने दूसरे साथियों पर भी काफी किये हैं और दक्षिण अफ्रीका में तो उनके परिणाम अच्छे ही आये हैं। वैद्यक दृष्टि से दोनों चीजों के त्याग के विषय में दो मत हो सकते हैं, पर इसमें मुझे कोई शंका ही नहीं कि संयम की दृष्टि से तो इन दोनों चीजों के त्याग में लाभ ही है। भोगी और संयमी के आहार भिन्न होने चाहिए, उनके मार्ग भिन्न होने चाहिए। ब्रह्मचर्य का पालन करने की इच्छा रखनेवाले लोग भोगी का जीवन बिताकर ब्रह्मचर्य को कठिन और कभी-कभी लगभग असंभव बना डालते हैं।

विश्व की सबसे प्राचीन सभ्यता है भारत

श्री नरेंद्र मोदी

भारत मंडपम् का ये भव्य भवन आज भगवान महावीर के दो हजार पांच सौ पचासवें निर्वाण महोत्सव के आरंभ का साक्षी बन रहा है। अभी हमने भगवान महावीर के जीवन पर विद्यार्थी मित्रों द्वारा तैयार किए गए चित्रण को देखा! युवा साथियों ने 'वर्तमान में वर्धमान' सांस्कृतिक कार्यक्रम की प्रस्तुति भी की। हमारे अनादि मूल्यों के प्रति, भगवान महावीर के प्रति युवा पीढ़ी का ये आकर्षण और समर्पण, ये विश्वास पैदा करता है कि देश सही दिशा में जा रहा है। इस ऐतिहासिक अवसर पर मुझे विशेष डाक टिकट और सिक्के रिलीज करने का सौभाग्य भी मिला है। ये आयोजन विशेष रूप से हमारे जैन संतों और साध्वियों के मार्गदर्शन और आशीर्वाद से संभव हुआ है। और इसलिए, मैं आप सभी के चरणों में प्रणाम करता हूँ। मैं समस्त देशवासियों को महावीर जयंती के इस पवित्र अवसर पर अपनी शुभकामनाएं देता हूं। आप सब तो जानते हैं, चुनाव की इस भागदौड़ के बीच, इस तरह के पुण्य कार्यक्रम में आना मन को बहुत ही शांति देने वाला है। पूज्य संतगण, आज इस अवसर पर मुझे महान मार्गदर्शक समाधिस्त आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज का स्मरण होना स्वाभाविक है। पिछले ही वर्ष छत्तीसगढ़ के चंद्रागिरी मंदिर में मुझे उनका सान्निध्य मिला था। उनका भौतिक शरीर भले ही हमारे बीच नहीं है, लेकिन, उनके आशीर्वाद जरूर हमारे साथ हैं।

साथियों, भगवान महावीर का ये दो हजार पांच सौ पचासवां निर्वाण महोत्सव हजारों वर्षों का एक दुर्लभ अवसर है। ऐसे अवसर, स्वाभाविक रूप से, कई विशेष संयोगों को भी जोड़ते हैं। ये वो समय है जब भारत अमृतकाल के शुरुआती दौर में है। देश आजादी के शताब्दी वर्ष को स्वर्णिम शताब्दी बनाने के लिए काम कर रहा है। इस साल हमारे संविधान को भी 75 वर्ष होने जा रहे हैं। इसी समय देश में एक बड़ा लोकतान्त्रिक उत्सव भी चल रहा है। देश का विश्वास है यहीं से भविष्य की नई यात्रा शुरू होगी। इन सारे संयोगों के बीच, आज हम यहां एक साथ उपस्थित हैं। और आप समझ गए होंगे एक साथ उपस्थित होने का मतलब क्या होता है? मेरा आप लोगों से जुड़ाव बहुत पुराना है। हर फिरकी की अपनी एक दुनिया है।

भारत मंडपम् का ये भव्य भवन आज भगवान महावीर के दो हजार पांच सौ पचासवें निर्वाण महोत्सव के आरंभ का साक्षी बन रहा है। अभी हमने भगवान महावीर के जीवन पर विद्यार्थी मित्रों द्वारा तैयार किए गए चित्रण को देखा! युवा साथियों ने 'वर्तमान में वर्धमान' सांस्कृतिक कार्यक्रम की प्रस्तुति भी की। हमारे अनादि मूल्यों के प्रति, भगवान महावीर के प्रति युवा पीढ़ी का ये आकर्षण और समर्पण...

भाइयों बहनों, देश के लिए अमृतकाल का विचार, ये केवल एक बड़ा संकल्प ही है ऐसा नहीं है। ये भारत की वो आध्यात्मिक प्रेरणा है, जो हमें अमरता और शाश्वतता को जीना सिखाती है। हम ढाई हजार वर्ष बाद भी आज भगवान महावीर का निर्वाण-दिवस मना रहे हैं। और हम ये जानते हैं कि, आगे भी कई हजार वर्ष बाद भी ये देश भगवान महावीर से जुड़े ऐसे उत्सव मनाता रहेगा। सदियों और सहस्राब्दियों में सोचने का ये सामर्थ्य... ये दूरदर्शी और दूरगामी सोच...इसीलिए ही, भारत न केवल विश्व की सबसे प्राचीन जीवित सभ्यता है, बल्कि, मानवता का सुरक्षित ठिकाना भी है। ये भारत ही है जो 'स्वयं' के लिए नहीं, 'सर्वम्' के लिए सोचता है। ये भारत ही है जो 'स्व' की नहीं, 'सर्वस्व' की भावना करता है। ये भारत ही है, जो अहम् नहीं वयम् की सोचता है। ये भारत ही है जो 'इति' नहीं, 'अपरिमित' में विश्वास करता है। ये भारत ही है, जो नीति की बात करता है, नेति की भी बात करता है। ये भारत ही है जो पिंड में ब्रह्मांड की बात करता है, विश्व में ब्रह्म की बात करता है, जीव में शिव की बात करता है।

साथियों, आज संघर्षों में फंसी दुनिया भारत से शांति की अपेक्षा कर रही है। नए भारत के इस नई भूमिका का श्रेय हमारे बढ़ते सामर्थ्य और विदेश नीति को दिया जा रहा है। लेकिन मैं आपको बताना चाहता हूँ, इसमें हमारी सांस्कृतिक छवि का बहुत बड़ा योगदान है। आज भारत इस भूमिका में आया है, क्योंकि आज हम सत्य और अहिंसा जैसे व्रतों को वैश्विक मंचों पर पूरे आत्मविश्वास से रखते हैं। हम दुनिया को ये बताते हैं कि वैश्विक संकटों और संघर्षों का समाधान भारत की प्राचीन संस्कृति में है।

साथियों, हर युग में जरूरत के मुताबिक नए विचार आते हैं। लेकिन, जब विचारों में ठहराव आ जाता है, तो विचार 'वाद' में बदल जाते हैं। और 'वाद' विवाद में बदल जाते हैं। लेकिन जब विवाद से अमृत निकलता है और अमृत के सहारे चलते हैं तब हम नवसर्जन की तरफ आगे बढ़ते हैं। लेकिन अगर विवाद में से विष निकलता है तब हम हर पल विनाश के बीज बोते हैं। 75 साल तक आजादी के बाद हमनें वाद किया, विवाद किया, संवाद किया और इस सारे मंथन से जो निकला, अब 75 साल हो गए, अब हम सबका दायित्व है कि हम उससे निकले हुए अमृत को लेकर के चलें, विष से हम मुक्ति ले लें और इस अमृतकाल को जी कर के देखें। वैश्विक संघर्षों के बीच देश युद्ध-रत हो रहे हैं। ऐसे में, हमारे तीर्थंकरों की शिक्षाएं और भी महत्वपूर्ण हो गई हैं। उन्होंने मानवता को वाद-विवाद से बचाने के लिए अनेकांतवाद और स्यात्वाद जैसे दर्शन दिये हैं। अनेकांतवाद यानी, एक विषय के अनेक पहलुओं को समझना। दूसरों के दृष्टिकोण को भी देखने और स्वीकारने की उदारता वाला। आस्था की ऐसी मुक्त व्याख्या, यही तो भारत की विशेषता है। और यही भारत का मानवता को संदेश है।

साथियों, आज संघर्षों में फंसी दुनिया भारत से शांति की अपेक्षा कर रही है। नए भारत की इस नई भूमिका का श्रेय हमारे बढ़ते सामर्थ्य और विदेश नीति को दिया जा रहा है। लेकिन मैं आपको बताना चाहता हूँ, इसमें हमारी सांस्कृतिक छवि का बहुत बड़ा योगदान है। आज भारत इस भूमिका में आया है, क्योंकि आज हम सत्य और अहिंसा जैसे व्रतों को वैश्विक मंचों पर पूरे आत्मविश्वास से रखते हैं। हम दुनिया को ये बताते हैं कि वैश्विक संकटों और संघर्षों का समाधान भारत की प्राचीन संस्कृति में है, भारत की प्राचीन परंपरा में है। इसीलिए, आज विरोधों में भी बंटे विश्व के लिए, भारत 'विश्व-बंधु' के रूप में अपनी जगह बना रहा है। 'क्लाइमेट चेंज' ऐसे संकटों के समाधान के लिए आज भारत ने 'Mission Life' जैसे ग्लोबल मूवमेंट की नींव रखी है। आज भारत ने विश्व को One Earth, One Family, One Future का vision दिया है। क्लीन एनर्जी और sustainable development के लिए हमने One world, One Sun, One grid का रोडमैप दिया है। आज हम इंटरनेशनल सोलर अलायंस जैसे futuristic global initiative का नेतृत्व कर रहे हैं। हमारे इन प्रयासों से दुनिया में एक उम्मीद ही नहीं जगी है, बल्कि भारत की

प्राचीन संस्कृति को लेकर विश्व का नजरिया भी बदला है।

साथियों, जैन धर्म का अर्थ ही है, जिन का मार्ग, यानी, जीतने वाले का मार्ग। हम कभी दूसरे देशों को जीतने के लिए आक्रमण करने नहीं आए। हमने स्वयं में सुधार करके अपनी कमियों पर विजय पाई है। इसीलिए, मुश्किल से मुश्किल दौर आए, लेकिन हर दौर में कोई न कोई ऋषि, मनीषी हमारे मार्गदर्शन के लिए प्रकट हुआ। बड़ी-बड़ी सभ्यताएं नष्ट हो गई, लेकिन, भारत ने अपना रास्ता खोज ही लिया।

भाइयों और बहनों, आप सबको याद होगा, केवल 10 साल पहले ही हमारे देश में कैसा माहौल था। चारों तरफ निराशा, हताशा! ये मान लिया गया था कि इस देश का कुछ नहीं हो सकता! भारत में ये निराशा, भारतीय संस्कृति के लिए भी उतनी ही परेशान करने वाली बात थी। इसीलिए, 2014 के बाद हमने भौतिक विकास के साथ ही विरासत पर गर्व का संकल्प भी लिया। आज हम भगवान महावीर का दो हजार पांच सौ पचासवां निर्वाण महोत्सव मना रहे हैं। इन 10 वर्षों में हमने ऐसे कितने ही बड़े अवसरों को सेलिब्रेट किया है। हमारे जैन आचार्यों ने मुझे जब भी आमंत्रण दिया, मेरा प्रयास रहा है कि उन कार्यक्रमों में भी जरूर शामिल रहूं। संसद के नए भवन में प्रवेश से पहले मैं 'मिच्छामी दुक्कड़म' कहकर अपने इन मूल्यों को याद करता हूँ। इसी तरह, हमने अपनी धरोहरों को संवारना शुरू किया। हमने योग और आयुर्वेद की बात की। आज देश की नई पीढ़ी को ये विश्वास हो गया है कि हमारी पहचान हमारा स्वाभिमान है। जब राष्ट्र में स्वाभिमान का ये भाव जाग जाता है, तो उसे रोकना असंभव हो जाता है। भारत की प्रगति इसका प्रमाण है।

साथियों, भारत के लिए आधुनिकता शरीर है, आध्यात्मिकता उसकी आत्मा है। अगर आधुनिकता से अध्यात्मिकता को निकाल दिया जाता है, तो अराजकता का जन्म होता है। और आचरण में अगर त्याग नहीं है, तो बड़े से बड़ा विचार भी विसंगति बन जाता है। यही दृष्टि भगवान महावीर ने हमें सदियों पहले दी थी। समाज में इन मूल्यों को पुनर्जीवित करना आज समय की मांग है।

भाइयों और बहनों, दशकों तक हमारे देश ने भी भ्रष्टाचार की त्रासदी को सहा है। हमने गरीबी की गहरी पीड़ा देखी है। आज देश जब उस मुकाम पर पहुंचा है कि, हमने 25 करोड़ देशवासियों को गरीबी के दलदल से निकाला है, आपको याद होगा, मैंने लाल किले से कहा था और अभी पूज्य महाराज जी ने भी कहा कि यही समय है, सही समय है। यही सही समय है कि हम हमारे समाज में अस्तेय-अहिंसा के आदर्शों को मजबूत करें। मैं आप सभी संत गणों को भरोसा देता हूँ, देश इस दिशा में हर संभव प्रयास जारी रखेगा। मुझे ये विश्वास भी है, कि भारत के भविष्य निर्माण की इस यात्रा में आप सभी संतों का सहयोग देश के संकल्पों को मजबूत बनाएगा, भारत को विकसित बनाएगा।

भगवान महावीर के आशीर्वाद 140 करोड़ देशवासियों का, और मानव मात्र का कल्याण करेंगे... और मैं सभी पूज्य संतों को श्रद्धापूर्वक प्रणाम करता हूं। उनकी वाणी में एक प्रकार से मोती प्रकट हो रहे थे। चाहे नारी सशक्तिकरण की बात हो, चाहे विकास यात्रा की बात हो, चाहे महान परंपरा की बात हो, सभी पूज्य संतों ने मूलभूत आदर्शों को रखते हुए वर्तमान व्यवस्थाओं में क्या हो रहा है, क्या होना चाहिए, बहुत ही कम समय में बहुत ही अद्‌भुत तरीके से प्रस्तुत किया, मैं इसके लिए उनका हृदय से बहुत-बहुत आभार व्यक्त करता हूं। और मैं उनके एक-एक शब्द को आशीर्वाद मानता हूं। वो मेरी भी बहुत बड़ी पूंजी है और देश के लिए उनका एक-एक शब्द प्रेरणा है। मुझे बहुत अच्छा लगा आप सबके बीच आने के लिए और इसी भावना के साथ, मैं भगवान महावीर के श्री चरणों में पुनः प्रणाम करता हूँ। मैं आप सब संतों के चरणों में प्रणाम करता हूं। बहुत बहुत धन्यवाद!

(महावीर निर्वाण महोत्सव पर नई दिल्ली में दिया गया भाषण)

व्यक्तित्व की बुनियाद

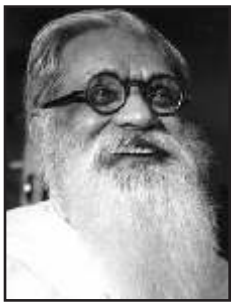

काका कालेलकर

'लोकोत्तर पुरुष भी अपने जमानेकी भिन्न-भिन्न ताकतों के फलस्वरूप ही बनते हैं।' कालबलको प्रधानता देनेवाले पक्ष का यह कथन है। दूसरा पक्ष कहता है कि 'लोकोत्तर पुरुष अपने काल के, अपने जमाने के सारे मसाले का उपयोग जरूर करते हैं, लेकिन उनकी प्रतिभा उनकी विरासतकी आभारी नहीं होती।' इसलिए हम नहीं कह सकते कि गांधीजी को उनके जमाने ने बनाया। उलटा, सत्य यह है कि गांधीजी ने अपने जमाने को बनाया । गांधीजी जैसे लोकोत्तर पुरुष इतिहास-विधाता की देन होते हैं, न कि ऐतिहासिक विरासत की ।

ये दो पक्ष सनातन काल से चलते आये हैं। दोनों ओर प्रबल विद्वान दिग्गज खड़े हैं और दोनों के बीच चर्चा पुश्त-दर-पुश्त चलती आई है। महाभारत का और भारत का का अभिप्राय कभी एक ओर झुकता है, तो कभी दूसरी ओर। आखिरकार भारतकार स्वयं अपने इम दोलायमान चित्त से ऊब आये होंगे, इसलिए उन्होंने भीष्म के मुंह में अपना अन्तिम निर्णय डाल दिया होगा। भारतकार कहते हैं :

'कालो वा कारणं राज्ञः राजा वा कालकारणम् ।
इति ते संशयो माऽभूत् राजा कालस्य कारणम् ।।'

यहां लोकोत्तर पुरुष को राजा कहा है। यह पुरानी परिभाषा है। जिस किसी- के पास समाजका नेतृत्व है, राष्ट्र का द्रव्यबल, मनुष्य-बल और अधिकार-बल जिसमें केन्द्रित है अथवा यह सारा जिसकी सेवा के लिए उपलब्ध है, उसी को राजा कहा जाता है। 'क्या कालबल से ही जमाने के अनुरूप राजशक्ति पैदा होती है या प्रतिभा-शाली समर्थ राजा ही अपने काल को बनाने वाला गढ़ैया है?' ऐसी उलझन में मत पड़ो। हम निश्चित रूप से कहते हैं कि राजा ही अपने जमाने को जन्म देता है, उसे बनाता है।' इसके विरुद्ध साधु संस्था चलाने वाले और अपने दोषों का उत्तरदायित्व अपने सिर पर न लेने वाले साधुओं ने दूसरा वचन चलाया है। वे कहते हैं, बेचारा साधु क्या करेगा? 'जैसा जुग वैसा जोगी।'

हम मानते हैं कि इस विषय में विमर्श चलाना व्यर्थ है। कालबल का प्रभाव राजा पर पड़ता ही है। और प्रतिभाशाली राजा के पुरुषार्थ का प्रभाव उसके काल पर पड़े बिना रहता ही नहीं। जब ऐतिहासिक खोज करनी ही है, तब दोनों ओर से करनी चाहिये । सत्य दोनों के बीच में ही है। यह सारा युगकार्य पुरुषार्थ और कालवल दोनों के परस्पर प्रभाव से ही हुआ है।

हम मानते हैं कि इस विषय में विमर्श चलाना व्यर्थ है। कालबल का प्रभाव राजा पर पड़ता ही है। और प्रतिभाशाली राजा के पुरुषार्थ का प्रभाव उसके काल पर पड़े बिना रहता ही नहीं। जब ऐतिहासिक खोज करनी ही है, तब दोनों ओर से करनी चाहिये । सत्य दोनों के बीच में ही है। यह सारा युगकार्य पुरुषार्थ और कालवल दोनों के परस्पर प्रभाव से ही हुआ है।

एक सवाल पूछा गया है : 'गांधीजी ने जो अपना जीवन-कार्य करके दिखाया, उसमें उनके व्यक्तित्व को बनाने वाले तत्त्व कौन-कौन से थे ? और जिस जमाने ने गांधीजी को अपनाया और गांधीजी के युग कार्य में सहयोग दिया, उस जमाने की बनावट में कौन-कौन से ऐतिहासिक तत्त्व थे ।' जवाब में हम इतना तो कह ही सकते हैं कि गांधीजी के जमाने में उन्हीं के साथ पैदा हुए लोग असंख्य थे । जो विरासत गांधीजी को मिली वह औरों को भी मिली थी। लेकिन वे कोई गांधीजी नहीं बन सके। उनमें से केवल गाधीजी ही क्यों अपना युगकार्य कर सके ? इससे अधिक जवाब न देते हुए हम कहेंगे कि गांधीजी के जीवन पर जिन-जिन तत्त्वों का असर हुआ, उनका अध्ययन करना आज अनेक तरह से लाभदायी है।

सौराष्ट्र के साथ श्रीकृष्ण का नाम जोड़ा जाता है। श्रीकृष्ण का जन्म भले ही मथुरा में हुआ हो, उनका बाल्यकाल भले ही गोकुल-वृन्दावन में व्यतीत हुआ हो और उन्होंने अपने मां-बापको कारागृह से छुड़ाने के लिए जो पूर्व-तैयारी की, बह भले ही मथुरा-वृन्दावन के इर्दगिर्द हरियाणी भूमि हो; और उनका अध्ययन-काल का निवास-स्थान भले ही उज्जैन रहा हो - श्रीकृष्ण का जीवन-कार्य द्वारका, दिल्ली और कुरुक्षेत्र के बीच ही विभक्त हुआ है। कहा जाता है कि श्रीकृष्ण की राजकाज-पटुता सौराष्ट्र के मुत्सद्दियों ने अपनायी है।

जो हो, सौराष्ट्र के द्वीपकल्प में अनेक छोटे-मोटे राजाओं के दरबारों ने मुत्सद्दियों की अच्छी परम्परा पैदा की। उस परम्परा का सम्बन्ध श्रीकृष्ण के साथ जोड़ा जा सकता है या नहीं, यह गौण सवाल है। सौराष्ट्र के छोटे-मोटे राजाओं ने पुराण-मान्य क्षात्र धर्म का पालन कहां तक किया और कहां तक लूटपाट करने वाले दलों का अनुकरण किया, वह देखने की जरूरत नहीं है। लेकिन सौराष्ट्र ने जो एक विशिष्ट वर्ग तैयार किया, उसमें सौराष्ट्र की प्रतिभा की झलक पायी जाती है। जब कोई महत्त्वाकांक्षी और तेजस्वी पुरुष राजाओं के आतंक से ऊब जाता था तब वह स्वेच्छा से अपने राजा के राज्य का नागरिकत्व छोड़ देता था और अपने को राजा का और उसके राज्यतन्त्र का विरोधी घोषित करता था। सौराष्ट्र की भाषा में ऐसे दलके लोगों को 'बहारवटिया' कहते हैं। अंग्रेजी में इन्हें हम voluntary outlaws कह सकते हैं। ऐसे 'बहारवटिया' लोग अपने राजा को कहला भेजते थे कि आज से हम तुम्हारे प्रजाजन नहीं है। तुमको, तुम्हारे राजतन्त्रों को और तुम्हारी प्रजा को हम परेशान करते रहेंगे। तुम्हारी प्रजा को भी पता चलना चाहिये कि राज्य-रक्षण की ताकत तुममें कितनी है। ये लोग न कभी किसी से पनाह मांगते थे, न किसी को देते थे।

राजशक्ति को चुनौती देना तेजस्वी पुरुष का ही काम था। ऐसे लोगों में दीन-जनों के प्रति कुछ दयाभाव रहता था सही, किन्तु राजसत्ता को चुनौती देकर पूर्णतः स्वाश्रयी बनने के वांद पुराणोतर क्षात्र-आदर्श का पालन करना उनके लिए संभव नहीं था । न उनकी ऐसी सांस्कृतिक भूमिका ही थी। लेकिन ऐसे 'वहारबटिया' लोगों में तेजस्विता के साथ दिलदार वृत्ति भी रहती थी। गरीब प्रजा उनसे डरती भी थी और उनसे रक्षण भी पाती थी। ऐसे लोगों को दिन-रात सतर्क रहना पड़ता था । अपना सिर अपने हाथ में लेकर ही जीना पड़ता था और रहना पड़ता था । इन 'बहारवटियों' का सबसे प्रधान गुण साहस था। जान और माल दोनों के बारे में बेफिक्र रहना यह थी उनकी प्राथमिक शिक्षा ।

सौराष्ट्र के चारणों ने और लोककवियों ने इन 'बहारवटिया' लोगों के काव्यमय उत्साही चित्र बहुत, दिये हैं। इसलिए सौराष्ट्र के लोक-मानस में 'बहारवटिया' एक तेजस्वी और लोकप्रिय मूर्ति है। राजसत्ताको चुनौती देनेवाले 'बहारवटियों' की शक्ति या तेजस्विता जिनमें नहीं थी, लेकिन जो राजसत्ता से ऊब आते थे ऐसे प्रजाजन राजा की धर्मबुद्धि जागृत करनेके लिए और अपनी निराशा जाहिर करने के लिए भी तरह-तरह के कष्ट सहन करते थे। उपवास रखना, अपने ही मालका नाश करना या आत्महत्या करना ये सब प्रकार प्रजाजन आतंक के असह्य होने पर आजमाते थे। इसके लिए शब्द है 'त्रागा' या 'त्रागु'।

ऐसे 'त्रागा' का दुरुपयोग भी किया जाता था। कोमल हृदय के लोगों के पास से नाजायज पैसा लेने के लिए लोग उनके द्वार पर भूखे रहते थे या कोड़े से अपने शरीर को पीटते थे। जब चमड़ी फटकर लहू निकलता था तब ऐसे त्रासदायक दृश्य से बचने के लिए दयालु लोग मांगा हुआ पैसा देकर छुटकारा पाते थे। आतंक के खिलाफ चलाये हुए

ऐसे विचित्र आतक को भी 'त्रागु' कहते थे। गांधीजी के मन में 'त्रागु' करने वालों के खिलाफ घृणा थी, इसलिए अपना सत्याग्रह 'त्रागा' का रूप न ले इसके लिए वे हमेशा सतर्क रहते थे और अपने अनुयायियों को भी समझाते थे कि सत्याग्रह 'त्रागा' नहीं है, एक उच्च चीज है।

काठियावाड़ी या सौराष्ट्री संस्कृति के ये दो तत्त्व – 'बहारबटिया' और 'त्रागा' से सम्बन्धित – गांधीजी जानते थे, इसलिए इसी को शुद्ध करके उन्होंने जो आध्यात्मिक रूप दिया वह था सत्याग्रह ।

गांधीजी के व्यक्तित्व के गठन में वैष्णव संस्कृति और जैन संस्कृति का प्रभाव भी बहुत था । वैष्णव संस्कृति उन्हें विरासत में ही मिली थी। गांधी-कुटुम्ब वैष्णव था और तुलसी की लकड़ी के मनकों की मालायें पहनता था। वैष्णव लोग अकसर सदाचारी भक्त होते हैं। तेजस्वी वैष्णव की दुनियावी महत्त्वाकांक्षा कितनी भी बड़ी क्यों न हो, संकट आने पर श्री रामचन्द्र या कृष्णचन्द्र की शरण जाना और उनके विश्वास पर अपने को छोड़ देना उनका स्वभाव ही होता है। वैष्णव लोग स्वभावतः शाकाहारी होते हैं। एकादशी आदि पर्व पर उपवास करते हैं। चान्द्रायण आदि व्रत उत्साह से लेते हैं। और अपना आर्थिक, पारिवारिक और सामाजिक व्यवहार सदाचार की मर्यादाओं में रहकर ही चलाते हैं। शराब नहीं पीना, मांस नहीं खाना जहां तक हो सके झूठ नहीं बोलना, किसी को दुःख नहीं देना, यथाशक्य गरीबों की सेवा करना और ईश्वर पर श्रद्धा रखकर कुशलता से व्यवहार चलाना – यह होता है आदर्श वैष्णव का लक्षण ।

ऐसे ही वैष्णवों का लक्षण गुजरात के ज्येष्ठ और श्रेष्ठ वैष्णव कवि नरसिंह मेहता के एक भजन में पाया जाता है। यह भजन गांधीजी ने अपनी जीवन-साधना के लिए अपनाया और उसके अनुसार जीने का अखंड प्रयत्न उन्होंने चलाया । जब कभी जीवन का कोई गम्भीर कार्य गांधीजी ने किया है या उठाया है तब 'वैष्णव जन तो तेने कहीए' वाला भजन गाकर ही उन्होंने कदम आगे बढ़ाया है। गांधीजी की कुल-परम्परा में रामभक्ति और तुलसी रामायण का श्रवण परंपरा से चला आता था। बचपन में डर लगा, अंधेरे में जाने की हिम्मत न हुई या किसी से भूत की बात सुनी, तो वे रामका ही नाम लेते थे। आगे जाकर उनकी ईश्वर- निष्ठा रामनाम के द्वारा ही व्यक्त होने लगी। उन्होंने अपना अंतिम 'वास राम- नाम लेकर ही छोड़ा । वैष्णव पुराणों में सदाचारी, ईश्वर-निष्ठ भक्तों के उदाहरण बहुत पाये जाते हैं। ऐसे उदाहरण या किस्से सुन-सुनकर गांधीजी ने अपनी वैष्णव निष्ठा दृढ़ की थी। किसी ने हमारा भला किया इसलिए हमने उसका भला किया, इसमें तो लेन-देनका बाजारू सौदा हुआ। ऐसे आदान-प्रदान में न भक्ति है, न अध्यात्म। किसी ने हमारा बुरा किया तो भी हमने उसका बुरा नहीं किया, मनमें भी उसका बुराः नहीं चाहा और उसका भला ही किया, तो हम इस दुनिया में जीत गये – यह कवि-वचन गांधीजी को अत्यन्त प्रिय थाः 'अवगुण केडे गुण करे ते जगमां जीत्यो सही,'।

हरिश्चन्द्र की कथा से उन्होंने सत्य के पालन का महत्त्व समझ लिया और आजन्म उसका पालन लिया। श्रवणकी कथा सुनकर माता-पिता की सेवा का व्रत उन्होंने आखिर तक चलाया। द्रौपदी के भाई श्रीकृष्ण की सहायता मांगना गांधीजी के लिए स्वाभाविक था। गांधीजी के चित्त पर ऐसा ही असाधारण प्रभाव पड़ा जैन साधुओं के विरक्त और तपस्वी जीवन का ।

भगवान महावीर के उपासक जैन लोग अपने दार्शनिक विश्वास के अनुसार परमात्मा ईश्वर को नहीं मान सकते। लेकिन जीवात्मा को और उसकी अमोघ शक्ति को वे जरूर मानते हैं। उपवास आदि तपस्या करने से देह का यानि शारीरिक वासनाओं का दमन होता है और आत्मशक्ति जागृत होकर अपना कार्य करने लगती है; और ऐसी आत्मशक्ति अमोघ है, हमेशा कारगर ही होती है, यह है आत्मवादियों का विश्वास ।

गांधीजी की सारी शक्ति, उनका अन्तिम आधार इस आत्मशक्ति पर ही था।? अहिंसा और तप ये दो जैन परम्परा के प्रधान अंग हैं। नंगे पैर चलना, वाहन का उपयोग नहीं करना; पौष्टिक पदार्थोंको नहीं खाना, उपवास रखना, ऐसे-ऐसे तपस्या के रूप जैनियों के अन्दर बहुत हैं। जैन साधु सिर के बाल नाई के द्वारा कटवायेंगे नहीं, उतारेंगे नहीं, लेकिन किसी शस्त्र की मदद के बिना केवल अंगुलियों से एक-एक करके उखेड़ देंगे। जैनियों में जीव दया का विकास कुछ एकांगी ढंग से बहुत बढ़ा है और इसके लिए वैष्णव आदि दूसरे लोगों के बीच वे हास्यास्पद

भी सिद्ध हुए हैं। गांधीजी ने वैष्णवों की मर्यादा, जैनियों का तप और जीव दया आदि सब तत्त्वों को स्वीकार करके अपनी बुद्धि के अनुसार उन्हें शुद्ध किया ।

देह-दण्डन के द्वारा वासनाओं पर विजय पायी जाती है और वासनायें क्षीण होने पर आत्मशक्ति प्रबल होती है। यह सिद्धान्त गांधीजी को इतना जंच गया कि उनकी प्रारम्भिक साधना इसी सिद्धान्त की बुनियाद पर खड़ी थी।

गांधीजी हर तरह की साधना को श्रद्धा से ग्रहण करते थे। साधु-सन्तों के अनुभवों पर और वचनों पर उनकी असीम श्रद्धा थी। लेकिन जिस किसी भी चीज को उन्होंने स्वीकार किया, उसे तर्क, बुद्धि और अनुभव की त्रिविध कसौटी पर कैसे बिना वे नहीं रहे। और इसमें उनका दिमाग बिलकुल तर्कशुद्ध वैज्ञानिक ढंग से काम करता था।

जैनियों की साधना के बारे में उनके मन में जो भी शंकायें उठीं उन्होंने एक अच्छे पारमार्थिक जीवित साधक श्रीमद् राजचन्द्रजी के साथ पत्र-व्यवहार करके उनका निवारण कर लिया । राजचन्द्र के वचनों का प्रभाव गांधीजी पर असाधारण था, तो भी राजचन्द्र के गुण-दोषों के प्रति उन्होंने अपनी आंखें मूंद नहीं ली थीं।

लोक सेवा करते गांधीजी ने जो कुछ भी राजकाज का और राजनीति का अध्ययन किया, उसके कारण उनकी व्यवहार-कुशलता बड़ी ही तेज हुई थी। ऐसी व्यवहार-कुशलता उन्हें जो कुछ भी मार्ग सुझाती थी उसका अमल करने से पहले गांधीजी उन बातों को सत्य और हिंसा की कसौटी पर अच्छी तरह से कसकर देखते थे। सत्य और अहिंसा की कसौटी पर जो बातें जायज न ठहरों, वे चाहे जितनी कारगर और आकर्षक क्यों न हों, गांधीजी ने उनका त्याग करते कभी भी संकोच नहीं किया। दीन प्रजा के मान्य और कुशल सेवक होने के कारण वे अपने कार्य की सफलता तो पूरी चाहते ही थे। लेकिन साधन-शुद्धि का आग्रह उन्होंने कभी नहीं छोड़ा। शुद्ध और सीधे रास्ते से उन्होंने अपने मन को कभी भी विचलित नहीं होने दिया। सब धर्मों के प्रति, शास्त्रों के प्रति, साधु-सत्पुरुषों के वचनों के प्रति असीम आदर रखते हुए भी उनकी अनन्य निष्ठा तो सत्यनारायण के प्रति ही थी। इस निष्ठा का सम्पूर्ण पालन करते हुए उनमें कर्मयोग की हर तरह की कुशलता आ गयी थी। 'योगः कर्मसु कौशलम्' इस व्याख्या के अनुसार उनकी परम जागरूक सत्यनिष्ठा ने ही उनको योगी बना दिया। अपने चित्त को संभालना यह परम-व्रत उन्होंने आखिर तक निभाया। चित्तरक्षा-व्रत के व्रती गांधीजी से बढ़कर शायद ही दूसरे पाये जायेंगे ।

सत्यका पालन करने के लिए अपने चित्तको जागरूकता से संभालना यही एक साधना थी, जिसके कारण वे अनेक गलतियों से, प्रमादों से और पापों से बच गये। अगर कोई गलती हुई तो उसका जाहिरा तौर पर स्वीकार, पश्चात्ताप और क्षालन उन्होंने किया ही है। अपने साथियों को वे अपनी साधना के सहसाधक मानते थे और सारे समाज को वे अपनी साधना का साक्षी समझते थे। इसलिए गुप्तता के दोष को उन्होंने पहले से ही टाल दिया था। जब गांधीजी विलायत जाने निकले तब उनकी वैष्णव माताने उन्हें एक जैन साधु के पास ले जाकर तीन व्रत दिलवायेः वे अभक्ष भक्षण नहीं करेंगे, शराब आदि का अपेय पान नहीं करेंगे और परस्त्री का विकारी स्पर्श नहीं करेंगे। इस त्रिविध व्रतने उन्हें इतने सुन्दर ढंग से बचाया कि व्रत लेन की और व्रत-पालन की साधना पर उनका विश्वास दृढ़ हुआ। देशसेवा के लिए स्थापित किये हुए अपने आश्रम की बुनियाद में उन्होंने ग्यारह व्रत रखे ।

गांधीजी जब विलायत गये तब कई थियोसॉफिस्ट और ईसाई धर्म-प्रचारकों से उनका परिचय बढ़ा। ईसाइयों के उत्साह के कारण गांधीजी ने उस धर्म के कई अच्छे-अच्छे ग्रन्थ पढ़े। ईसा मसीहके जीवन का और उपदेश का गांधीजी पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा और उनकी वैष्णव धर्मनिष्ठा दृढ़ हुई। ईसाइयों की धर्म-जिज्ञासा, धर्मनिष्ठा और उनका सामाजिक आदर्श इन सब बातों का गहरा अध्ययन करने से गांधीजी को बड़ा ही लाभ हुआ । रूढ़ संस्कृति के संस्कारों का बचपन से किया हुआ पालन बहुत दफे यान्त्रिक और जड़ बन जाता है। गहराई में उतरकर हर बातकी बुनियाद ढूंढने का सुझता ही नहीं । लेकिन जब एक ही पवित्र आदर्शवाली दो भिन्न संस्कृतियों की तुलना करने का मौका मिलता है तब जिज्ञासु पारमार्थिक व्यक्ति की बुद्धिशक्ति और जीवन- निष्ठा एकदम तेज हो उठती है और रूढ़ बातों का गूढ़ रहस्य ऐसे

व्यक्ति के सामने नये और जीवित ढंग से प्रकट होता है। गांधीजी का ऐसा ही हुआ। ईसाई धर्म-साधना के गुण-दोष वे समझ सके और अपनी आर्य परम्परा की साधना के और संस्कृति-विस्तार के गुण-दोष भी वे पहचान सके । गांधीजी के स्वभाव के अनुसार जब वे गुण-दोष को पहचानते हैं, तब उसकी चर्चा नहीं करते, सिर्फ उससे लाभ उठाते हैं। अगर किसी आदमी के बारे में भला-बुरा अनुभव हुआ तो वे अपना रुख तुरन्त या धीमे-धीमे बदल देते थे, लेकिन उसकी चर्चा में कभी नहीं उतरते थे, सिवाय उस आदमी में कुछ सुधार करने की इच्छा या आशा हो। इस तरह किसी भी संस्था के बारे में, पक्ष या पंथ के बारे में और किसी धर्म-समाज के बारे में निष्कारण चर्चा करना उनके स्वभाव में था ही नहीं । सिर्फ एक ही दफे उन्होंने किसी को लिखते हुए साफ-साफ कह दिया कि ईसाई धर्म में कौन-कौन-सी बातें उन्हें जंचती नहीं या वे समझ नहीं पाते ।

विद्यार्थी के तौर पर जब विलायत में रहते थे, तब गांधीजी ने निरामिषाहार के बारे में काफी साहित्य पढ़ा और बचपन में विरासत में उन्हें मांसाहार निषेध की जो दीक्षा मिली थी, उसके लिए उन्हें अच्छी बुनियाद मिल गयी। निरामिषाहार का पश्चिमी साहित्य पढ़ने के बाद वहां के लोगों से उन्होंने कहा कि 'मनुष्य-शरीर मांसाहार के लिए योग्य नहीं है।

विद्यार्थी के तौर पर जब विलायत में रहते थे, तब गांधीजी ने निरामिषाहार के बारे में काफी साहित्य पढ़ा और बचपन में विरासत में उन्हें मांसाहार निषेध की जो दीक्षा मिली थी, उसके लिए उन्हें अच्छी बुनियाद मिल गयी। निरामिषाहार का पश्चिमी साहित्य पढ़ने के बाद वहां के लोगों से उन्होंने कहा कि 'मनुष्य-शरीर मांसाहार के लिए योग्य नहीं है, मांसाहार के कारण तरह-तरह के रोग मनुष्य को होते हैं-आदि लाभ-हानि की सब दलीलें गौण हैं। मांसाहार निषेध की बुनियाद प्रधानतया नैतिक ही होनी चाहिये। पशु-पक्षियों को जीना पसन्द है, उन्हें जीने का हक है और आहार के लिए जब हम उन्हें मारते हैं तब उनके प्रति हम अन्याय और पाप करते हैं- यह शुद्ध नैतिक भूमिका लेकर ही हमें मांसाहार का त्याग करना चाहिये ।' हमारे देश में भी मांसाहार का निषेध करने वाले लोगों ने अपना यह अनुभव लिख रखा है कि मांसाहार से नये-नये रोग होते हैं। हमारी संस्कृति कहती आयी है कि असल में मनुष्य मांसाहारी नहीं था। मनुष्य बिगड़ा और उसने मांस खाना शुरू किया। तब वह उसे अपना स्वाभाविक और जायज आहार मानने लगा । लेकिन फिर से उसने देखा कि मांसाहार में पाप है, इसलिए उसे छोड़ देना चाहिये। उसका प्रारम्भ उन्हीं लोगों से हो जिनको मांसाहार से कोई लाभ ही नहीं है। संत- सत्पुरुषों ने मांस खाना छोड़ दिया और धीरे-धीरे सारे समाज का मानस मांसाहार के विरुद्ध हो गया। आज हमारे देश में जो लोग मांस खा सकते हैं वे भी बहुत कम खाते हैं। गांधीजी ने पश्चिम से यह सीखा कि जानवरों का दूध मनुष्य का आहार नहीं है, हालांकि दूध के सेवन से ही मनुष्य मांस का त्याग कर सका है।

जब गांधीजी भारत आये तब यहां उनको अनुभव हुआ कि अंग्रेज अपने देश में अलग होता है और भारत में राज्यकर्ता होने के कारण अलग होता है। सर फिरोजशाह मेहता ने भी यही बात उनके मन पर ठसाई ।

जब गांधीजी दक्षिण अफ्रीका गये तब उनको यूरोपीय लोगों का और उनकी संस्कृति का तीसरा दर्शन हुआ। ईसाई धर्म भी लोगों के जीवन में कैसे नये-नये रूप धारण कर सकता है, यह भी वे देख सके।-गांधीजी के चरित्र्य के गठन में दक्षिण अफ्रीका का अनुभव सबसे अधिक महत्त्व का साबित हुआ । सिद्धांत मे दृढ़ रहना और रोजमर्रा के व्यवहार में तरह-तरह के समझौते के लिए तैयार रहना, इसमें व्यवहार-कुशलता भी है और उच्च अध्यात्म भी । बेचारे भोले-भाले अफ्रीकन लोग ! उनका देश उनसे छीनकर और उसे निचोड़ कर उन पर राज्य करने वाले और साथ-साथ उनपर उपकार बताने वाले अंग्रेज और डच लोग; और दोनों के बीच रहकर अपनी आजीविका प्राप्त करने वाले भारतीय, चीनी और दूसरे एशियाई लोग- इन तीनों का त्रिखंड-व्यापी असमान सहयोग देखने का मौका गांधीजी को मिला। दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने टॉल्स्टॉय, रस्किन, स्टुअर्ट चेस, एमरसन, थोरो, एडवर्ड कार्पेन्टर आदि बुनियादी विचार

करने वाले लोगों के ग्रन्थ पढ़े। आत्म-प्रधान भारतीय संस्कृति और भोगैश्वर्य-प्रधान आधुनिक संस्कृति के गुणावगुण और बला-बल उन्होंने देख लिये और युग-पुरुष की श्रद्धा से दोनों के बीच का संघर्ष हिम्मत पूर्वक शुरू किया।

गांधीजी का दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह था तो सिर्फ तीन पाउण्ड का अपमानास्पद कर हटाने के लिए और ऐसे ही छोटे-मोटे अन्याय दूर करनेके लिए तथा यत्किचित् सहूलियतें प्राप्त करने के लिए। लेकिन बिलकुल असहाय, अनपढ़ मुट्ठीभर लोगों को लेकर गोरी सरकार और गोरी संस्कृति के सामने लड़नेके लिए तैयार होना एक अद्‌भुत वीर कर्म था ।

ईसा मसीह का उपदेश, ईसा मसीह के नाम से प्रचलित ईसाई धर्म और ईसाई कहलाती पश्चिम की आधुनिक (वर्तमान) संस्कृति, इनको पहचानकर गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों का नेतृत्व हाथ में लिया और केवल आत्म-विश्वास के बल पर लोकोत्तर सफलता प्राप्त की।

सब तरह की प्रतिकूल परिस्थिति होते हुए भी गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका के लोगों की सहानुभूति प्राप्त की। और जहां कहीं भी धार्मिकता और सदाचार का आग्रह दीख पड़ा, वहां उसे संगठित करके गांधीजी ने अधर्म और अज्ञान के ऊपर विजय पायी और मनुष्य-हृदय परकी अपनी श्रद्धा सिद्ध की। सन्तों का यह वचन भी उन्होंने सिद्ध किया कि 'अपबल, तपबल और बाहुबल, चौथा है बल दाम'-ऐसे चतुर्विध बलके सामने, बिलकुल अकिंचन लोग भी, 'राम के बल के सहारे' खड़े हो सकते हैं। इतना ही नहीं, बल्कि आत्मा-राम का यह बल विजय भी पा सकता है, यह भी उन्होंने सिद्ध कर दिखाया ।

उसमें गांधीजी की लोकोत्तर श्रद्धा तो काम करती ही थी। किन्तु केवल श्रद्धा व्यवहार में सफलता नहीं दिखा सकती। उसके लिए तो हजारों लोगों के हृदय में आत्मशक्ति जाग्रत करनेका, उपवास आदि आत्मशुद्धि का तन्त्र भी चाहिये । जैन और वैष्णव संस्कृति में से यह तन्त्र उन्हें मिला था। 'बहारवटियों' की तेजस्विता, 'त्रागुं' करने वाले लोगों की सरफरोशी और पश्चिम के लोगों की तन्त्रनिष्ठा- इन सबको एकत्र कर के गांधीजी ने एक अभूतपूर्व झगड़ा दक्षिण अफ्रीका में चलाया, जो सचमुच यूरोप और एशिया के बीच का ही झगड़ा था । कच्छ, काठियावाड़ और गुजरात की भूमि अनेक तरह से इस्लाम और भारत धर्म के सहयोग की प्रयोग-भूमि है। एक मुस्लिम के साथ अपनी बचपन की दोस्ती निभाने के लिए गांधीजी ने क्या-क्या नहीं किया ?

यही वृत्ति उनको 'खिलाफत का सवाल अपनाने' तक ले गयी। मुस्लिम सहयोग-का अनुभव उन्हें दक्षिण अफ्रीका में जितना काम आया उतना ही भारत में भी काम आया। सौराष्ट्र से ही गांधीजी को पारसी लोगों का अच्छा परिचय था और पारसी स्वभाव की खुशबू को उन्होंने शुरू से पहचाना था। दक्षिण अफ्रीका में और भारत में पारसियों के साथ गांधीजी का सुन्दर सम्बन्ध रहा। और स्वराज्य कार्य के लिए पारसियों से वे अच्छे से अच्छा सहयोग प्राप्त कर सके। व्यक्तिगत जीवन में, सामाजिक या राष्ट्रीय जीवन में और अंतरराष्ट्रीय सम्बन्धों में हर चीज को कितना महत्त्व देना, कहां विरोध को टालना और कहाँ लड़ लेना, यह गांधीजी अच्छी तरह से जानते थे। और जब लड़ते थे तब भी कहां तक लड़ना इसका सुक्ष्म विवेक भी उनके पास था। सत्य और हिंसा की संमिश्र उपासना से ही उनमें यह खूबी आयी थी और सब तरह के लोगों के साथ नम्रता पूर्वक पेश आते हुए भी वे आत्मनिष्ठ रह सके और परिस्थिति कभी उनको खा नहीं सकी ।

आखिर तक गांधीजी विद्यार्थी और साधक ही रहे। हर व्यक्ति से, हर परिस्थिति से और हर संघर्ष से वे नयी-नयी बातें सीखते गये। और हर शक्ति का उपयोग भी वे कर सके। परिस्थिति जितनी बिगड़ी हुई हो उतना ही उससे लड़ने में उनको लुत्फ आता था और उतनी ही उनकी ईश्वर-निष्ठा बढ़ती जाती थी ।

इस जमाने की सब तरह की राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक शक्तियों से उन्होंने लाभ उठाया, उनका प्रभाव अपने पर होने दिया; लेकिन शुरू से आखिर तक उन्होंने अपना व्यक्तित्व बनाये रखा और इसीलिए इस दुनिया को छोड़ने के बाद भविष्य के युग के लिए मानव जाति पर वे अपना लोकोत्तर प्रभाव छोड़ सके ।

(काका कालेलकर ग्रंथावली से साभार)

निबंध

मजदूरी और प्रेम

सरदार पूर्ण सिंह

हल चलाने वाले का जीवन

हल चलाने वाले और भेड़ चराने वाले प्राय: स्वभाव से ही साधु होते हैं। हल चलाने वाले अपने शरीर का हवन किया करते हैं। खेत उनकी हवनशाला है। उनके हवनकुंड की ज्वाला की किरणें चावल के लंबे और सुफेद दानों के रूप में निकलती हैं। गेहूँ के लाल-लाल दाने इस अग्नि की चिनगारियों की डालियों-सी हैं। मैं जब कभी अनार के फूल और फल देखता हूँ तब मुझे बाग के माली का रुधिर याद आ जाता है। उसकी मेहनत के कण जमीन में गिरकर उगे हैं और हवा तथा प्रकाश की सहायता से मीठे फलों के रूप में नजर आ रहे हैं। किसान मुझे अन्न में, फूल में, फल में आहुति हुआ सा दिखाई पड़ता है। कहते हैं, ब्रह्माहुति से जगत् पैदा हुआ है। अन्न पैदा करने में किसान भी ब्रह्मा के समान है। खेती उसके ईश्वरी प्रेम का केंद्र है। उसका सारा जीवन पत्ते-पत्ते में, फूल-फूल में, फल-फल में बिखर रहा है। वृक्षों की तरह उसका भी जीवन एक प्रकार का मौन जीवन है। वायु, जल, पृथ्वी, तेज और आकाश की निरोगता इसी के हिस्से में है। विद्या यह नहीं पढ़ा; जप और तप यह नहीं करता; संध्या-वंदनादि इसे नहीं आते; ज्ञान, ध्यान का इसे पता नहीं, मंदिर, मस्जिद, गिरजे से इसे कोई सरोकार नहीं नहीं; केवल साग-पात खाकर ही यह अपनी भूख निवारण कर लेता है। ठंडे चश्मों और बहती हुई नदियों के शीतल जल से यह अपनी प्यास बुझा लेता है। प्रात:काल उठकर यह अपने हल-बैलों को नमस्कार करता है और खेत जोतने चल देता है। दोपहर की धूप इसे भाती है। इसके बच्चे मिट्टी ही में खेल- खेलकर बड़े हो जाते हैं। इसको और इसके परिवार को बैल और गाँवों से प्रेम है। उनकी यह सेवा करता है। पानी बरसाने वाले के दर्शनार्थ आँखें नीले आकाश की ओर उठती हैं। नयनों की भाषा में यह प्रार्थना करता है। सायं और प्रात: दिन और रात विधाता इसके हृदय में अचिंतनीय और अद्‌भुत आध्यात्मिक भावों की वृष्टि करता है। यदि कोई इसके घर आ जाता है तो यह उसको मृदु वचन, मीठे जल और अन्न से तृप्त करता है। धोखा यह किसी को नहीं देता। यदि इसको कोई धोखा दे भी दे, तो इसका इसे ज्ञान नहीं होता; क्योंकि इसकी खेती हरी-भरी है; गाय इसकी दूध देती है; स्त्री इसकी आज्ञाकारिणी है; मकान इसका पुण्य और आनंद का स्थान है। पशुओं को चराना, नहलाना, खिलाना, पिलाना, उसके बच्चों की अपने बच्चों की तरह सेवा करना, खुले आकाश के नीचे उसके साथ

हल चलाने वाले और भेड़ चराने वाले प्राय: स्वभाव से ही साधु होते हैं। हल चलाने वाले अपने शरीर का हवन किया करते हैं। खेत उनकी हवनशाला है। उनके हवनकुंड की ज्वाला की किरणें चावल के लंबे और सुफेद दानों के रूप में निकलती हैं। गेहूँ के लाल-लाल दाने इस अग्नि की चिनगारियों की डालियों-सी हैं। मैं जब कभी अनार के फूल और फल देखता हूँ...

रातें गुजार देना क्या स्वाध्याय से कम है? दया, वीरता और प्रेम जैसा इन किसानों में देखा जाता है, अन्यत्र मिलने का नहीं। गुरु नानक ने ठीक कहा है 'भोले भाव मिलें रघुराई', भोले भाले किसानों को ईश्वर अपने खुले दीदार का दर्शन देता है। उनकी फूस की छतों में से सूर्य और चंद्रमा छन-छनकर उनके बिस्तरों पर पड़ते हैं। ये प्रकृति के जवान साधु हैं। जब कभी मैं इन बे-मुकुट के गोपालों के दर्शन करता हूँ, मेरा सिर स्वयं ही झुक जाता है। जब मुझे किसी फकीर के दर्शन होते हैं तब मुझे मालूम होता है कि नंगे सिर, नंगे पाँव, एक टोपी सिर पर, एक लँगोटी कमर में, एक काली कमली कंधे पर, एक लंबी लाठी हाथ में लिए हुए गौवों का मित्र, बैलों का हमजोली, पक्षियों का हमराज, महाराजाओं का अन्नदाता, बादशाहों को ताज पहनाने और सिंहासन पर बिठाने वाला, भूखों और नंगों को पालने वाला, समाज के पुष्पोद्यान का माली और खेतों का वाली जा रहा है।

गड़रिये का जीवन

एक बार मैंने एक बुड्ढे गड़रिये को देखा। घना जंगल है। हरे-हरे वृक्षों के नीचे उसकी सफेद ऊन वाली भेड़ें अपना मुँह नीचे किए हुए कोमल-कोमल पत्तियाँ खा रही हैं। गड़रिया बैठा आकाश की ओर देख रहा है। ऊन कातता जाता है। उसकी आँखों में प्रेम- लाली छाई हुई है। वह निरोगता की पवित्र मदिरा से मस्त हो रहा है। बाल उसके सारे सुफेद हैं और क्यों न सुफेद हों? सुफेद भेड़ों का मालिक जो ठहरा। परंतु उसके कपोलों से लाली फूट रही है। बरफानी देशों में वह मानो विष्णु के समान क्षीरसागर में लेटा है। उसकी प्यारी स्त्री उसके पास रोटी पका रही है। उसकी दो जवान कन्याएँ उसके साथ जंगल-जंगल भेड़ चराती घूमती हैं। अपने माता-पिता और भेड़ों को छोड़कर उन्होंने किसी और को नहीं देखा। मकान इनका बेमकान है, घर इनका बेघर हे, ये लोग बेनाम और बेपता हैं।

किसी के घर कर मैं न घर कर बैठना इस दारे फानी में। ठिकाना बेठिकाना और मकाँ बर ला-मकाँ रखना ॥

इस दिव्य परिवार को कुटी की जरूरत नहीं। जहाँ जाते हैं, एक घास की झोपड़ी बना लेते हैं। दिन को सूर्य रात को तारागण इनके सखा हैं। गड़रिये की कन्या पर्वत के शिखर के ऊपर खड़ी सूर्य का अस्त होना देख रही है। उनकी सुनहली किरणें इसके लिए लावण्यमय मुख पर पड़ रही हैं। यह सूर्य को को देख रही है और वह इसको देख रहा है।

हुए थे आँखों के कल इशारे इधर हमारे उधर तुम्हारे।
चले थे अश्कों के क्या फवारे इधर हमारे उधर तुम्हारे ॥

बोलता कोई भी नहीं। सूर्य उसकी युवावस्था की पवित्रता पर मुग्ध है और वह आश्चर्य के अवतार सूर्य की महिमा के तूफान में पड़ी नाच रही है। इनका जीवन बर्फ की पवित्रता से पूर्ण और वन की सुगंधि से सुगंधित है। इनके मुख, शरीर और अंत:करण सुफेद, इनकी बर्फ, पर्वत और भेड़ें सुफेद। अपनी सुफेद भेड़ों में यह परिवार शुद्ध सुफेद ईश्वर के दर्शन करता है। जो खुदा को देखना हो तो मैं देखता हूँ तुमको। मैं देखता हूँ तुमको जो खुदा को देखना हो॥

भेड़ों की सेवा ही इनकी पूजा है। जरा एक भेड़ बीमार हुई, सब परिवार पर विपत्ति आई। दिन-रात उसके पास बैठे काट देते हैं। उसे अधिक पीड़ा हुई तो इन सब की आँखें शून्य आकाश में किसी को देखने लग गईं। पता नहीं ये किसे बुलाती हैं। हाथ जोड़ने तक की इन्हें फुरसत नहीं। पर हाँ, इन सब की आँखें किसी के आगे शब्द-रहित संकल्प-रहित मौन प्रार्थन में खुली हैं। दो रातें इसी तरह गुजर गईं। इनकी भेड़ अब अच्छी है। इनके घर मंगल हो रहा है। सारा परिवार मिलकर गा रहा है। इतने में नीले आकाश पर बादल घिरे और झम झम बरसने लगे। मानो प्रकृति के देवता भी इनके आनंद से आनंदित हुए। बूढ़ा गड़रिया आनंद-मत्त होकर नाचने लगा। वह कहता कुछ नहीं, रग-रग उसकी नाच रही है। पिता को ऐसा सुखी देख दोनों कन्याओं ने एक-दूसरे का हाथ पकड़कर पहाड़ी राग अलापना आरंभ कर दिया। साथ ही धम- धम थम-थम नाच की उन्होंने धूम मचा दी। मेरी आँखों के सामने ब्रह्मानंद का समाँ बाँध दिया। मेरे पास मेरा भाई खड़ा था। मैंने उससे कहा - 'भाई, अब मुझे भी भेड़ें ले दो।' ऐसे ही मूक जीवन से मेरा भी कल्याण होगा। विद्या को भूल जाऊँ तो अच्छा है। मेरी पुस्तकें खो जायँ तो उत्तम है। ऐसा होने से कदाचित इस वनवासी परिवार की तरह मेरे दिल के नेत्र खुल जायँ और मैं ईश्वरीय झलक देख सकूँ। चंद्र और सूर्य की विस्तृत ज्योति में जो वेदगान हो रहा है उसे इस गड़रिये की कन्याओं की तरह मैं सुन तो न सकूँ, परंतु कदाचित प्रत्यक्ष देख सकूँ। कहते हैं, ऋषियों ने भी इनको देखा ही

था, सुना न था। पंडितों की ऊटपटाँग बातों से मेरा जी उकता गया है। प्रकृति की मंद-मंद हँसी में ये अनपढ़ लोग ईश्वर के हँसते हुए ओंठ देख रहे हैं। पशुओं के अज्ञान में गंभीर ज्ञान छिपा हुआ है। इन लोगों के जीवन में अद्‌भुत आत्मानुभव भरा हुआ है। गड़रिये के परिवार की प्रेम-मजदूरी का मूल्य कौन दे सकता है?

मजदूर की मजदूरी

आपने चार आने पैसे मजदूर के हाथ में रखकर कहा - 'यह लो दिन भर की अपनी मजदूरी।' वाह क्या दिल्लगी है! हाथ, पाँव, सिर, आँखें इत्यादि सब के सब अवयव उसने आपको अर्पण कर दिए। ये सब चीजें उसकी तो थीं ही नहीं, ये तो ईश्वरीय पदार्थ थे। जो पैसे आपने उसको दिए वे भी आपके न थे। वे तो पृथ्वी से निकली हुई धातु के टुकड़े थे; अतएव ईश्वर के निर्मित थे। मजदूरी का ऋण तो परस्पर की प्रेम-सेवा से चुकता होता है। अन्न-धन देने से नहीं। वे तो दोनों ही ईश्वर के हैं। अन्न-धन वही बनाता है, जल भी वही देता है। एक जिल्दसाज ने मेरी एक पुस्तक की जिल्द बाँध दी। मैं तो इस मजदूर को कुछ भी न दे सका। परंतु उसने उम्र भर के लिए एक विचित्र वस्तु मुझे दे डाली। जब कभी मैंने उस पुस्तक को उठाया, मेरे हाथ जिल्दसाज के हाथ पर जा पड़े। पुस्तक देखते ही मुझे जिल्दसाज याद आ जाता है। वह मेरा आमरण मित्र हो गया है, पुस्तक हाथ में आते ही मेरे अंत:करण में रोज भरतमिलाप का सा समाँ बँध जाता है।

आपने चार आने पैसे मजदूर के हाथ में रखकर कहा - 'यह लो दिन भर की अपनी मजदूरी।' वाह क्या दिल्लगी है! हाथ, पाँव, सिर, आँखें इत्यादि सब के सब अवयव उसने आपको अर्पण कर दिए। ये सब चीजें उसकी तो थीं ही नहीं, ये तो ईश्वरीय पदार्थ थे। जो पैसे आपने उसको दिए वे भी आपके न थे। वे तो पृथ्वी से निकली हुई धातु के टुकड़े थे; अतएव ईश्वर के निर्मित थे।

गाढ़े की एक कमीज को एक अनाथ विधवा सारी रात बैठकर सीती है, साथ ही साथ वह अपने दुख पर रोती भी है एक दिन को खाना न मिला। रात को भी कुछ मयस्सर न हुआ। अब वह एक-एक टाँके पर आशा करती है कि कमीज कल तैयार हो जायगी; तब कुछ तो खाने के लिए मिलेगा। जब वह थक जाती है। तब ठहर जाती है। सुई हाथ में लिए हुए है, कमीज घुटने पर बिछी हुई है, उसकी आँखों की दशा उस आकाश की जैसी है जिसमें बादल बरसकर अभी-अभी बिखर गए हैं। खुली आँखें ईश्वर के ध्यान में लीन हो रही हैं। कुछ काल के उपरांत 'हे राम' कहकर उसने फिर सीना शुरू कर दिया। इस माता और इस बहन की सिली हुई कमीज मेरे लिए मेरे शरीर का नहीं मेरी आत्मा का वस्त्र है। इसका पहनना मेरी तीर्थ-यात्रा है। इस कमीज में उस विधवा के सुख-दु:ख, प्रेम और पवित्रता के मिश्रण से मिली हुई जीवन-रूपिणी गंगा की बाढ़ चली जा रही है। ऐसी मजदूरी और ऐसा काम प्रार्थना, संध्या और नमाज से क्या कम है? शब्दों से तो प्रार्थना हुआ नहीं करती। ईश्वर तो कुछ ऐसी ही मूक प्रार्थनाएँ सुनता है और तत्काल सुनता है।

प्रेम-मजदूरी

मुझे तो मनुष्य के हाथ से बने हुए कामों में उनकी प्रेममय पवित्र आत्मा की सुगंध आती है। राफेल आदि के चित्रित चित्रों में उनकी कला-कुशलता को देख इतनी सदियों के बाद भी उनके अंत:करण के सारे भावों का अनुभव होने लगता है। केवल चित्र का ही दर्शन नहीं, किंतु साथ ही उसमें छिपी हुई चित्रकार की आत्मा तक के दर्शन हो जाते हैं। परंतु यंत्रों की सहायता से बने हुए फोटो निर्जीव से प्रतीत होते हैं। उनमें और हाथ के चित्रों में उतना ही भेद है जितना कि बस्ती और श्मशान में। हाथ की मेहनत से चित्रों में जो रस भर जाता है वह भला लोहे के द्वारा बनाई हुई चीज में कहाँ! जिस आलू को मैं स्वयं बोता हूँ, मैं स्वयं पानी देता हूँ, जिसके इर्द-गिर्द की घास-पात खोदकर मैं साफ करता हूँ उस आलू में जो रस मुझे आता है वह टीन में बंद किए हुए अचार मुरब्बे में नहीं आता। मेरा विश्वास है कि जिस चीज में मनुष्य के प्यारे हाथ लगते हैं, उसमें उसके हृदय का प्रेम और मन की पवित्रता सूक्ष्म रूप से मिल जाती है और उसमें मुर्दे को जिंदा करने की शक्ति आ जाती है। होटल में बने हुए भोजन यहाँ नीरस होते हैं क्योंकि वहाँ मनुष्य मशीन बना दिया जाता है। परंतु अपनी

प्रियतमा के हाथ से बने हुए रूखे-सूखे भोजन में कितना रस होता है जिस मिट्टी के घड़े को कंधों पर उठाकर, मीलों दूर से उसमें मेरी प्रेममग्न प्रियतमा ठंडा जल भर लाती है, उस लाल घड़े का जल जब मैं पीता हूँ तब जल क्या पीता हूँ, अपनी प्रेयसी के प्रेमामृत को पान करता हूँ। जो ऐसा प्रेमप्याला पीता हो उसके लिए शराब क्या वस्तु है? प्रेम से जीवन सदा गदगद रहता है। मैं अपनी प्रेयसी की ऐसी प्रेम-भरी, रस-भरी, दिल-भरी सेवा का बदला क्या कभी दे सकता हूँ?

उधर प्रभात ने अपनी सुफेद किरणों से अँधेरी रात पर सुफेदी- सी छिटकाई इधर मेरी प्रेयसी, मैना अथवा कोयल की तरह अपने बिस्तर से उठी। उसने गाय का बछड़ा खोला, दूध की धारा से अपना कटोरा भर लिया। गाते-गाते अन्न को अपने हाथों से पीसकर सुफेद आटा बना लिया। इस सुफेद आटे से भरी हुई छोटी-सी टोकरी सिर पर, एक हाथ में दूध से भरा हुआ लाल मिट्टी का कटोरा, दूसरे हाथ में मक्खन की हाँड़ी। जब मेरी प्रिया घर की छत के नीचे इस तरह खड़ी होती है तब वह छत के ऊपर की श्वेत प्रभा से भी अधिक आनंददायक, बलदायक, बुद्धिदायक जान पड़ती है। उस समय वह उस प्रभा से अधिक रसीली, अधिक रँगीली, जीती-जागती, चौतन्य और आनंदमयी प्रातःकालीन शोभा-सी लगती है। मेरी प्रिया अपने हाथ से चुनी हुई लकड़ियों को अपने दिल से चुराई हुई एक चिनगारी से लाल अग्नि में बदल देती है। जब वह आटे को छलनी से छानती है तब मुझे उसकी छलनी के नीचे एक अद्‌भुत ज्योति की लौ नजर आती है। जब वह उस अग्नि के ऊपर मेरे लिए रोटी बनाती है तब उसके चूल्हे के भीतर मुझे तो पूर्व दिशा की नभोलालिमा से भी अधिक आनंददायिनी लालिमा देख पड़ती है। यह रोटी नहीं, कोई अमूल्य पदार्थ है। मेरे गुरु ने इसी प्रेम से संयम करने का नाम योग रखा है। मेरा यही योग है।

मजदूरी और कला

आदमियों की तिजारत करना मूर्खों का काम है। सोने और लोहे के बदले मनुष्य को बेचना मना है। आजकल भाप की कलों का दाम तो हजारों रुपया है; परंतु मनुष्य कौड़ी के सौ-सौ बिकते हैं! सोने और चाँदी की प्राप्ति से जीवन का आनंद नहीं मिल सकता। सच्चा आनंद तो मुझे मेरे काम से मिलता है। मुझे अपना काम मिल जाय तो फिर स्वर्गप्राप्ति की इच्छा नहीं, मनुष्य-पूजा ही सच्ची ईश्वर-पूजा है। मंदिर और गिरजे में क्या रखा है? ईंट,

पत्थर, चूना कुछ ही कहो आज से हम अपने ईश्वर की तलाश मंदिर, मस्जिद, गिरजा और पोथी में न करेंगे। अब तो यही इरादा है कि मनुष्य की अनमोल आत्मा में ईश्वर के दर्शन करेंगे यही आर्ट है – यही धर्म है। मनुष्य के हाथ से ही ईश्वर के दर्शन कराने वाले निकलते हैं। बिना काम, बिना मजदूरी, बिना हाथ के कला–कौशल के विचार और चिंतन किस काम के सभी देशों के इतिहासों से सिद्ध है कि निकम्मे पादड़ियों, मौलवियों, पंडितों और साधुओं का, दान के अन्न पर पला हुआ ईश्वर–चिंतन, अंत में पाप, आलस्य और भ्रष्टाचार में परिवर्तित हो जाता है। जिन देशों में हाथ और मुँह पर मजदूरी की धूल नहीं पड़ने पाती वे धर्म और कला–कौशल में कभी उन्नति नहीं कर सकते। पद्मासन निकम्मे सिद्ध हो चुके हैं। यही आसन ईश्वर–प्रप्ति करा सकते हैं जिनसे जोतने, बोने, काटने और मजदूरी का काम लिया जाता है। लकड़ी, ईट और पत्थर को मूर्तिमान करने वाले लुहार, बढ़ई, मेमार तथा किसान आदि वैसे ही पुरुष हैं जैसे कवि, महात्मा और योगी आदि। उत्तम से उत्तम और नीच से नीच काम, सबके सब प्रेम–शरीर के अंग हैं।

निकम्मे रहकर मनुष्यों की चिंतन–शक्ति थक गई है। बिस्तरों और आसनों पर सोते और बैठे–बैठे मन के घोड़े हार गए हैं। सारा जीवन निचुड़ चुका है। स्वप्न पुराने हो चुके हैं। आजकल की कविता में नयापन नहीं। उसमें पुराने जमाने की कविता की पुनरावृत्ति मात्र है। इस नकल में असल की पवित्रता और कुँवारेपन का अभाव है। अब तो एक नए प्रकार का कला–कौशल–पूर्ण संगीत साहित्य संसार में प्रचलित होने वाला है। यदि वह न प्रचलित हुआ तो मशीनों के पहियों के नीचे दबकर हमें मरा समझिए। यह नया साहित्य मजदूरों के हृदय से निकलेगा। उन मजदूरों के कंठ से यह नई कविता निकलेगी जो अपना जीवन आनंद के साथ खेत की मेड़ों का, कपड़े के तागों का, जूते के टाँकों का, लकड़ी की रगों का, पत्थर की नसों का भेदभाव दूर करेंगे। हाथ में कुल्हाड़ी, सिर पर टोकरी नंगे सिर और नंगे पाँव, धूल से लिपटे और कीचड़ से रंगे हुए ये बेजबान कवि जब जंगल में लकड़ी काटेंगे तब लकड़ी काटने का शब्द इनके असभ्य स्वरों से मिश्रित होकर वायुयान पर चढ़ दसों दिशाओं में ऐसा अद्‌भुत गान करेगा कि भविष्य के कलावंतों के लिए वही ध्रूपद और मल्हार का काम देगा। चरखा कातने वाली स्त्रियों के गीत संसार के सभी देशों के कौमी गीत होंगे। मजदूरों की मजदूरी ही यथार्थ पूजा होगी। कलारूपी धर्म की तभी वृद्धि होगी। तभी नए कवि पैदा होंगे, तभी नए औलियों का उद्‌भव होगा। परंतु ये सब के सब मजदूरी के दूध से पलेंगे। धर्म, योग, शुद्धाचरण, सभ्यता और कविता आदि के फूल इन्हीं मजदूर–ऋषियों के उद्यान में प्रफुल्लित होंगे।

मजदूरी और फकीरी

मजदूरी और फकीरी का महत्व थोड़ा नहीं। मजदूरी और फकीरी मनुष्य के विकास के लिए परमावश्यक है। बिना मजदूरी किए फकीरी का उच्च भाव शिथिल हो जाता है; फकीरी भी अपने आसन से गिर जाती है; बुद्धि बासी पड़ जाती है। बासी चीजें अच्छी नहीं होती। कितने ही, उम्र भर बासी बुद्धि और बासी फकीरी में मग्न रहते हैं; परंतु इस तरह मग्न होना किस काम का? हवा चल रही है; जल बह रहा है; बादल बरस रहा है; पक्षी नहा रहे हैं; फूल खिल रहे हैं; घास नई, पेड़ नए, पत्ते नए – मनुष्य की बुद्धि और फकीरी ही बासी! ऐसा दृश्य तभी तक रहता है जब तक बिस्तर पर पड़े–पड़े मनुष्य प्रभात का आलस्य सुख मनाता है। बिस्तर से उठकर जरा बाग की सैर करो, फूल की सुगंध लो, ठंडी वायु में भ्रमण करो, वृक्षों के कोमल पल्लवों का नृत्य देखो तो पता लगे कि प्रभात–समय जागना बुद्धि और अंत:करण को तरोताजा करना है और बिस्तर पर पड़े रहना उन्हें बासी कर देना है। निकम्मे बैठे हुए चिंतन करते रहना, अथवा बिना काम किए शुद्ध विचार का दावा करना, मानो सोते–सोते खर्राटे मारना है। जब तक जीवन के अरण्य में पादड़ी, मौलवी, पंडित और साधु, संन्यासी, हल, कुदाल और खुरपा लेकर मजदूरी न करेंगे तब तक उनका आलस्य जाने का नहीं, तब तक उनका मन और उनकी बुद्धि, अनंत काल बीत जाने तक, मलिन मानसिक जुआ खेलती ही रहेगी। उनका चिंतन बासी, उनका ध्यान बासी, उनकी पुस्तकें बासी, उनका लेख बासी, उनका विश्वास बासी और उनका खुदा भी बासी हो गया है। इसमें संदेह नहीं कि इस साल के गुलाब के फूल भी वैसे ही हैं जैसे पिछले साल के थे। परंतु इस साल वाले ताजे हैं। इनकी लाली नई है, इनकी सुगंध भी इन्हीं की अपनी है। जीवन के नियम नहीं पलटते; वे सदा एक ही से

रहते हैं। परंतु मजदूरी करने से मनुष्य को एक नया और ताजा खुदा नजर आने लगता है।

गेरुए वस्त्रों की पूजा क्यों करते हो? गिरजे की घंटी क्यों सुनते हो? रविवार क्यों मनाते हो? पाँच वक्त नमाज क्यों पढ़ते हो? त्रिकाल संध्या क्यों करते हो? मजदूर के अनाथ नयन, अनाथ आत्मा और अनाश्रित जीवन की बोली सीखो। फिर देखोगे कि तुम्हारा यही साधारण जीवन ईश्वरीय भजन हो गया।

मजदूरी तो मनुष्य के समष्टि-रूप परिणाम है, आमा रूपी धातु के गढ़े हुए सिक्के का नकदी बयाना है जो मनुष्यों की आत्माओं को खरीदने के वास्ते दिया जाता है। सच्ची मित्रता ही तो सेवा है। उससे मनुष्यों के हृदय पर सच्चा राज्य हो सकता है। जाति-पाँति, रूप-रंग और नाम-धाम तथा बाप-दादे का नाम पूछे बिना ही अपने आप को किसी के हवाले कर देना प्रेम-धर्म का तत्व है। जिस समाज में इस तरह के प्रेम-धर्म का राज्य होता है उसका हर कोई हर किसी को बिना उसका नाम-धाम पूछे ही पहचानता है; क्योंकि पूछने वाले का कुल और उसकी जात वहाँ वही होती है जो उसकी, जिससे कि वह मिलता है। वहाँ सब लोग एक ही माता-पिता से पैदा हुए भाई-बहन हैं। अपने ही भाई-बहनों के माता-पिता का नाम पूछना क्या पागलपन से कम समझा जा सकता है? यह सारा संसार एक कुटुंबवत् है। लँगड़े, लूले, अंधे और बहरे उसी मौरूसी घर की छत के नीचे रहते हैं जिसकी छत के नीचे बलवान, निरोग और रूपवान कुटुंबी रहते हैं। मूढ़ों और पशुओं का पालन-पोषण बुद्धिमान, सबल और निरोग ही तो करेंगे। आनंद और प्रेम की राजधानी का सिंहासन सदा से प्रेम और मजदूरी के ही कंधों पर रहता आया है। कामना सहित होकर भी मजदूरी निष्काम होती है; क्योंकि मजदूरी का बदला ही नहीं। निष्काम कर्म करने के लिए जो उपदेश दिए जाते हैं उनमें अभावशील वस्तु सुभावपूर्ण मान ली जाती है। पृथ्वी अपने ही अक्ष पर दिन-रात घूमती है। यह पृथ्वी का स्वार्थ कहा जा सकता है। परंतु उसका यह घूमना सूर्य के इर्द-गिर्द घूमता तो है और सूर्य के इर्द-गिर्द घूमना सूर्यमंडल के साथ आकाश में एक सीधी लकीर पर चलना है। अंत में, इसको गोल चक्कर खाना सदा ही सीधा चलना है। इसमें स्वार्थ का अभाव है। इसी तरह मनुष्य की विविध कामनाएँ उसके जीवन को मानो उसके स्वार्थरूपी धुरे पर चक्कर देती हैं। परंतु उसका जीवन अपना तो है ही नहीं, वह तो किसी आध्यात्मिक सूर्यमंडल के साथ की चाल है और अंततः यह चाल जीवन का परमार्थ रूप है। स्वार्थ का यहाँ भी अभाव है, जब स्वार्थ कोई वस्तु ही नहीं तब निष्काम और कामनापूर्ण कर्म करना दोनों ही एक बात हुई। इसलिए मजदूरी और फकीरी का अन्योन्याश्रय संबंध है।

मजदूरी करना जीवनयात्रा का आध्यात्मिक नियम है। जोन ऑव आर्क (Joan of Arc) की फकीरी और भेड़ें चराना, टाल्सटाय का त्याग और जूते गाँठना, उमर खैयाम का प्रसन्नतापूर्वक तंबू सीते फिरना, खलीफा उमर का अपने रंग महलों में चटाई आदि बुनना, ब्रह्मज्ञानी कबीर और रैदास का शूद्र होना, गुरु नानक और भगवान श्रीकृष्ण का कूक पशुओं को लाठी लेकर हाँकना - सच्ची फकीरी का अनमोल भूषण है।

समाज का पालन करने वाली दूध की धारा एक दिन गुरु नानक यात्रा करते-करते लालो नाम के एक बढ़ई के घर ठहरे। उस गाँव का भागो नामक रईस बड़ा मालदार था। उस दिन भागो के घर ब्रह्मभोज था। दूर-दूर से साधु आए थे। गुरु नानक का आगमन सुनकर भागो ने उन्हें भी निमंत्रण भेजा। गुरु ने भागो का अन्न खाने से इनकार कर दिया। इस बात पर भागो को बड़ा क्रोध आया। उसने गुरु नानक को बलपूर्वक पकड़ मँगाया और उनसे पूछा - आप मेरे यहाँ का अन्न क्यों नहीं ग्रहण करते? गुरुदेव ने उत्तर दिया - भागो, अपने घर का हलवा-पूरी ले आओ तो हम इसका कारण बतला दें। वह हलवा-पूरी लाया तो गुरुनानक ने लालो के घर से भी उसके मोटे अन्न की रोटी मँगवाई। भागो की हलवा-पूरी उन्होंने एक हाथ में और भाई लालो की मोटी रोटी दूसरे हाथ में लेकर दोनों को जो दबाया तो एक से लोहू टपका और दूसरी से दूध की धारा निकली। बाबा नानक का यही उपदेश हुआ। जो धारा भाई लालो की मोटी रोटी से निकली थी वही समाज का पालन करने वाली दूध की धारा है। यही धारा शिवजी की जटा से और यही धारा मजदूरों की उँगलियों से निकलती है।

मजदूरी करने से हृदय पवित्र होता है; संकल्प दिव्य लोकांतर में विचरते हैं। हाथ की मजदूरी ही से सच्चे

ऐश्वर्य की उन्नति होती है। जापान में मैंने कन्याओं और स्त्रियों को ऐसी कलावती देखा है कि वे रेशम के छोटे-छोटे टुकड़ों को अपनी दस्तकारी की बदौलत हजारों की कीमत का बना देती हैं, नाना प्रकार के प्राकृतिक पदार्थों और दृश्यों को अपनी सुई से कपड़े के ऊपर अंकित कर देती हैं। जापान निवासी कागज, लकड़ी और पत्थर की बड़ी अच्छी मूर्तियाँ बनाते हैं। करोड़ों रुपये के हाथ के बने हुए जापानी खिलौने विदेशों में बिकते हैं। हाथ की बनी हुई जापानी चीजें मशीन से बनी हुई चीजों को मात करती हैं। संसार के सब बाजारों में उनकी बड़ी माँग रहती है।

जापान में मैंने कन्याओं और स्त्रियों को ऐसी कलावती देखा है कि वे रेशम के छोटे-छोटे टुकड़ों को अपनी दस्तकारी की बदौलत हजारों की कीमत का बना देती हैं, नाना प्रकार के प्राकृतिक पदार्थों और दृश्यों को अपनी सुई से कपड़े के ऊपर अंकित कर देती हैं। जापान निवासी कागज, लकड़ी और पत्थर की बड़ी अच्छी मूर्तियाँ बनाते हैं। करोड़ों रुपये के हाथ के बने हुए जापानी खिलौने विदेशों में बिकते हैं। हाथ की बनी हुई जापानी चीजें मशीन से बनी हुई चीजों को मात करती हैं। संसार के सब बाजारों में उनकी बड़ी माँग रहती है।

पश्चिमी देशों के लोग हाथ की बनी हुई जापान की अद्‌भुत वस्तुओं पर जान देते हैं। एक जापानी तत्त्वज्ञानी का कथन है कि हमारी दस करोड़ उँगलियाँ सारे काम करती हैं। उन उँगलियों ही के बल से, संभव है हम जगत् को जीत लें। ("We shall beat the world with the tips of our fingers") जब तक धन और ऐश्वर्य की जन्मदात्री हाथ की कारीगरी की उन्नति नहीं होती तब तक भारतवर्ष ही की क्या, किसी भी देश या जाति की दरिद्रता दूर नहीं हो सकती। यदि भारत की तीस करोड़ नर-नारियों की उँगलियाँ मिलकर कारीगरी के काम करने लगें तो उनकी मजदूरी की बदौलत कुबेर का महल उनके चरणों में आप ही आप आ गिरे।

अन्न पैदा करना तथा हाथ की कारीगरी और मिहनत से जड़ पदार्थों को चैतन्यचिह्न से सुसज्जित करना, क्षुद्र पदार्थों को अमूल्य पदार्थों में बदल देना इत्यादि कौशल ब्रह्मरूप होकर धन और ऐश्वर्य की सृष्टि करते हैं! कविता फकीरी और साधुता के ये दिव्य कला-कौशल जीते-जागते और हिलते-डुलते प्रतिरूप हैं। इनकी कृपा से मनुष्य जाति का कल्याण होता है। ये उस देश में कभी निवास नहीं करते जहाँ मजदूर और मजदूर की मजदूरी का सत्कार नहीं होता, जहाँ शूद्र की पूजा नहीं होती। हाथ से काम करने वालों से प्रेम रखने और उनकी आत्मा का सत्कार करने से साधारण मजदूरी सुंदरता का अनुभव करने वाले कला-कौशल, अर्थात कारीगरी, का रूप हो जाती है। इस देश में जब मजदूरी का आदर होता था तब इसी आकाश के नीचे बैठे हुए मजदूरों के हाथों ने भगवान बुद्ध के निवार्ण-सुख को पत्थर पर इस तरह जड़ा था कि इतना काल बीत जाने पर, पत्थर की मूर्ति के दर्शन से ऐसी शांति प्राप्त होती है जैसी कि स्वयं भगवान बुद्ध के दर्शन से होती है। मुँह, हाथ, पाँव इत्यादि का गढ़ देना साधारण मजदूरी; परंतु मन के गुप्त भावों और अंत:करण की कोमलता तथा जीवन की सभ्यता को प्रत्यक्ष प्रकट कर देना प्रेम-मजदूरी है। शिवजी के तांडव नृत्य को और पार्वतीजी के मुख की शोभा को पत्थरों की सहायता से वर्णन करना जड़ को चैतन्य बना देना है। इस देश में कारीगरी का बहुत दिनों से अभाव है। महमूद ने जो सोमनाथ के मंदिर में प्रतिष्ठित मूर्तियाँ तोड़ी थीं उससे उसकी कुछ भी वीरता सिद्ध नहीं होती। उन मूर्तियों को तो हर कोई तोड़ सकता था। उसकी वीरता की प्रशंसा तब होती जब वह यूनान की प्रेम-मजदूरी, अर्थात वहाँ वालों के हाथ की अद्वितीय कारीगरी प्रकट करने वाली मूर्तियाँ तोड़ने का साहस कर सकता। वहाँ की मूर्तियाँ तो बोल रही हैं - वे जीती जागती हैं, मुर्दा नहीं। इस समय के देवस्थानों में स्थापित मूर्तियाँ देखकर अपने देश की आध्यात्मिक दुर्दशा पर लज्जा आती है। उनसे तो यदि अनगढ़ पत्थर रख दिए जाते तो अधिक शोभा पाते। जब हमारे यहाँ के मजदूर, चित्रकार तथा लकड़ी और पत्थर पर काम करने वाले भूखों मरते हैं तब हमारे मंदिरों की मूर्तियाँ कैसे सुंदर हो सकती हैं? ऐसे कारीगर तो यहाँ शूद्र के नाम से पुकारे जाते हैं। याद रखिए, बिना शूद्र-राजा के मूर्ति-पूजा किंवा, कृष्ण और शालिग्राम के छिछोरेपन से दरिद्रता को प्राप्त हो रहे हैं। यही कारण है, जो आज हम जातीय दरिद्रता से पीड़ित हैं।

पश्चिमी सभ्यता का एक नया आदर्श

पश्चिमी सभ्यता मुख मोड़ रही है। वह एक नया आदर्श देख रही है। अब उसकी चाल बदलने लगी है। वह कलों की पूजा को छोड़कर मनुष्यों की पूजा को अपना आदर्श बना रही है। इस आदर्श के दर्शाने वाले देवता रस्किन और टालस्टॉय आदि हैं। पाश्चात्य देशों में नया प्रभात होने वाला है। वहाँ के गंभीर विचार वाले लोग इस प्रभात का स्वागत करने के लिए उठ खड़े हुए हैं। प्रभात होने के पूर्व ही उसका अनुभव कर लेने वाले पक्षियों की तरह इन महात्माओं को इस नए प्रभात का पूर्व ज्ञान हुआ है। और हो क्यों न? इंजनों के पहिए के नीचे दबकर वहाँ वालों के भाई-बहन – नहीं नहीं उनकी सारी जाति पिस गई; उनके जीवन के धुरे टूट गए, उनका समस्त धन घरों से निकलकर एक ही दो स्थानों में एकत्र हो गया। साधारण लोग मर रहे हैं, मजदूरों के हाथ-पाँव फट रहे हैं, लहू चल रहा है! सर्दी से ठिठुर रहे हैं। एक तरफ दरिद्रता का अखंड राज्य है, दूसरी तरफ अमीरी का चरम दृश्य। परंतु अमीरी भी मानसिक दु:खों से विमर्दित है। मशीनें बनाई तो गई थीं मनुष्यों का पेट भरने के लिए – मजदूरों को सुख देने के लिए – परंतु वे काली-काली मशीनें ही काली बनकर उन्हीं मनुष्यों का भक्षण कर जाने के लिए मुख खोल रही हैं। प्रभात होने पर ये काली-काली बलाएँ दूर होंगी। मनुष्य के सौभाग्य का सूर्योदय होगा।

शोक का विषय है कि हमारे और अन्य पूर्वी देशों में लोगों को मजदूरी से तो लेशमात्र भी प्रेम नहीं है, पर वे तैयारी कर रहे हैं पूर्वोक्त काली मशीनों का अलिंगन करने की। पश्चिम वालों के तो ये गले पड़ी हुई बहती नदी की काली कमली हो रही हैं। वे छोड़ना चाहते हैं, परंतु काली कमली उन्हें नहीं छोड़ती। देखेंगे पूर्व वाले इस कमली को छाती से लगाकर कितना आनंद अनुभव करते हैं। यदि हममें से हर आदमी अपनी दस उँगलियों की सहायता से साहसपूर्वक अच्छी तरह काम करे तो हम मशीनों की कृपा से बढ़े हुए परिश्रम वालों को वाणिज्य के जातीय संग्राम में सहज ही पछाड़ सकते हैं। सूर्य तो सदा पूर्व ही से पश्चिम की ओर जाता है। पर आओ पश्चिम से आने वाली सभ्यता के नए प्रभात को हम पूर्व से भेजें।

इंजनों की वह मजदूरी किस काम की जो बच्चों, स्त्रियों और कारीगरों को ही भूखा नंगा रखती है और केवल सोने, चाँदी, लोहे आदि धातुओं का ही पालन करती है। पश्चिम को विदित हो चुका है कि इनसे मनुष्य का दु:ख दिन पर दिन बढ़ता है। भारतवर्ष जैसे दरिद्र देश में मनुष्य के हाथों की मजदूरी के बदले कलों से काम लेना काल का डंका बजाना होगा। दरिद्र प्रजा और भी दरिद्र होकर मर जायगी। चेतन से चेतन की वृद्धि होती है। मनुष्य को तो मनुष्य ही सुख दे सकता है। परस्पर की निष्कपट सेवा ही से मनुष्य जाति का कल्याण हो सकता है। धन एकत्र करना तो मनुष्य-जाति के आनंद-मंगल का एक साधारण-सा और महातुच्छ उपाय है। धन की पूजा करना नास्तिकता है; ईश्वर को भूल जाना है; अपने भाई-बहनों तथा मानसिक सुख और कल्याण के देने वालों को मारकर अपने सुख के लिए शारीरिक राज्य की इच्छा करना है, जिस डाल पर बैठे हैं उसी डाल को स्वयं ही कुल्हाड़ी से काटना है। अपने प्रियजनों से रहित राज्य किस काम का? प्यारी मनुष्य-जाति का सुख ही जगत् के मंगल का मूल साधन है। बिना उसके सुख के अन्य सारे उपाय निष्फल हैं। धन की पूजा से ऐश्वर्य, तेज, बल और पराक्रम नहीं प्राप्त होने का। चौतन्य आत्मा की पूजा से ही ये पदार्थ प्राप्त होते हैं। चौतन्य-पूजा ही से मनुष्य के प्रेममय हृदय, निष्कपट मन और मित्रतापूर्ण नेत्रों से निकलकर बहती है तब वही जगत् में सुख के खेतों को हरा-भरा और प्रफुल्लित करती है और वही उनमें फल भी लगाती है। आओ, यदि हो सके तो टोकरी उठाकर कुदाली हाथ में लें, मिट्टी खोदें और अपने हाथ से उसके प्याले बनावें। फिर एक-एक प्याला घर-घर में, कुटिया-कुटिया में रख आवें और सब लोग उसी में मजदूरी का प्रेमामृत पान करें।

है रीत आशिकों की तन मन निसार करना।
रोना सितम उठाना और उनको प्यार करना॥

शाश्वत नैतिकता की ओर

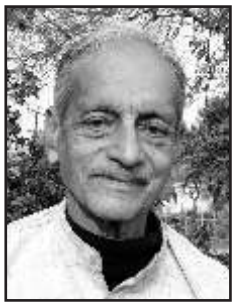

सच्चिदानंद सिन्हा

गांधी के नैतिक विचारों का निर्धारण और विकास इस ढंग से हुआ कि इसने अन्य समकालीन नैतिक विचारों की तुलना में गांधी के विचारों को ज्यादा शाश्वत बना दिया। निस्सन्देह, इसका सबसे महत्त्वपूर्ण कारण यह था कि गांधी का जन्म एक ऐसी दुनिया में हुआ था जो काफी संकुचित हो गयी थी और संचार के जो साधन विकसित हो रहे थे, वे सारी दुनिया की समस्याओं को उसकी दहलीज तक पहुँचा चुके थे। लेकिन, उनकी शाश्वतता भी उनके उस अपने विशिष्ट विकास से उत्पन्न हुई थी जिसने अनेक महान धर्मों और समकालीन नैतिक धाराओं के साथ घनिष्ठ सम्पर्कों का अनुक्रम बन्धन कर दिया था।

पश्चिम के नैतिक विचारों से उनका पहला मुकाबला शाकाहार और ब्रह्मवाद (थियोसॉफी) के माध्यम से हुआ था। शाकाहार ने उन्हें उनकी उन भोजन-सम्बन्धी लतों की बाबत विश्वास प्रदान किया था जिनको लेकर वह पहली दफा इंग्लैंड गये तो काफी चिन्तित रहते थे। उन्होंने शाकाहार का पालन किया क्योंकि वह वचनबद्ध थे। उन्होंने अपनी माता के समक्ष शाकाहारी रहने की शपथ ली थी। हालाँकि, उन्होंने उस वक्त तक इसे सिद्धान्ततः स्वीकार नहीं किया था। लेकिन, इंग्लैंड में जब देखा कि बहुत से ऐसे यूरोपीय और अंग्रेज हैं जो शाकाहारी बन रहे हैं तो उन्हें इस बात से सुकून मिला। वह शाकाहारवाद की सम्पूर्ण जाँच में पड़ गये और यह ढूँढ़ निकाला कि यह उस आदर्श जीवन के बिल्कुल अनुरूप है जिसको वह आगे चलकर अपने समक्ष निर्धारित करने वाले थे। इस सन्तुष्टि का लाभ यह हुआ कि शाकाहार उनके साथ केवल इसलिए नहीं बना रहा कि यह एक संकीर्ण पारिवारिक परिवेश प्रदत्त हठधर्म था, बल्कि यह जीवन के प्रति उनकी सम्पूर्ण अभिवृत्ति का हिस्सा बन चुका था। उन्होंने आगे चलकर अपनी आत्मकथा में शाकाहारियों के नैतिक विचारों के बारे में लिखा, 'वे नैतिक रूप से इस निष्कर्ष पर पहुँच चुके थे कि अपने से निम्न प्राणियों पर मनुष्यों की श्रेष्ठता इसलिए नहीं है कि मनुष्य उन प्राणियों का शिकार करता है, बल्कि इसलिए है कि मनुष्य उन प्राणियों की रक्षा करता है। इन दोनों के बीच इस तरह का आपसी सहयोग रहना चाहिए जैसा कि मनुष्य और मनुष्य के बीच रहता है।' यद्यपि स्पष्टतः यह हल्के परिणाम का था, इस प्रवृत्ति का धरती की पारिस्थितिकीय साम्यावस्था के साथ अच्छा व्यवहार था। अस्त्र

पश्चिम के नैतिक विचारों से उनका पहला मुकाबला शाकाहार और ब्रह्मवाद (थियोसॉफी) के माध्यम से हुआ था। शाकाहार ने उन्हें उनकी उन भोजन-सम्बन्धी लतों की बाबत विश्वास प्रदान किया था जिनको लेकर वह पहली दफा इंग्लैंड गये तो काफी चिन्तित रहते थे। उन्होंने शाकाहार का पालन किया क्योंकि वह वचनबद्ध थे। उन्होंने अपनी माता के समक्ष शाकाहारी रहने की शपथ ली थी।

और आखेट कौशल के अर्जन से अतिवध करने की मनुष्य की प्रवृत्ति ने धरती के जीव-जन्तुओं के बड़े हिस्से को नष्ट कर दिया है। आधुनिक औद्योगिकवाद के आगमन से उक्त प्रवृत्ति ने सनकी समानुपात धारण कर लिया है। इस प्रसंग में शाकाहारवाद ने उस जीवन समर्थक व्यवस्था को जिसमें कि वह पैदा हुए थे, उजाड़ स्थिति में कर देने वाली मानवीय प्रवृत्ति के विपर्यय की माँग की। बाद में सबसे साधारण वस्तु के भी उपयोग में कंजूसी उनके अहिंसा के धर्म का हिस्सा बन गयी। हालाँकि, इंग्लैंड प्रवास के दूसरे वर्ष के दौरान दो थियोसॉफिस्टों से हुई उनकी मुलाकात ने उनकी सबसे गहरी धार्मिक अनुभूतियों को जगा दिया था। उन्हीं लोगों ने पहली बार उनका गीता से परिचय कराया और उन्हें सर एडविन आर्नोल्ड द्वारा किये गये इसके अनुवाद 'दी साँग सेलेसियल' (दिव्यगान) को एक साथ पढ़ने के लिए आमन्त्रित किया। उनके मस्तिष्क पर जिन श्लोकों ने गहरी छाप छोड़ी वे निम्नलिखित हैं :

'यदि कोई मनन करता है, अनुभव की वस्तुओं का,
तो उत्पन्न होता है आकर्षण; आकर्षण से उत्पन्न
होती है इच्छा,
इच्छा से प्रज्वलित होता है घोर मनोविकार;
मनोविकार से उत्पन्न होती है अविचारिता;
उनकी स्मृति-सब धोखा देती है- उद्देश्यपूर्ति तक,
मन और मनुष्य सभी विनष्ट हो जाते हैं।'

ये पंक्तियाँ जीवन-भर उनके व्यक्तिगत आचरण को आकार देने में एक मार्ग निर्देशक की भूमिका निभाती रहीं। उक्त दोनों ब्रह्मवादियों (थियोसॉफिस्टों) की संगति में उन्होंने बुद्ध की जीवनी 'दी लाइट ऑफ एशिया' पढ़ी जिसे सर एडविन आर्नोल्ड ने ही लिखी थी। लगभग यही समय था जब उनकी मुलाकात मैनचेस्टर के एक ईसाई व्यक्ति से हुई, जिसने उनका बाइबिल से परिचित कराया। वह हमसे कहते हैं- 'लेकिन बाइबिल के नये विधान ने, विशेषत: 'सरमन ऑन दी माउंट', एक भिन्न प्रभाव प्रस्तुत किया जो सीधे मेरे हृदय में बैठ गया। मैंने इसकी तुलना गीता से की। ये छंद, 'लेकिन मैं तुमसे कहता हूँ, तुम शैतान का प्रतिरोध मत करो; लेकिन कोई भी तुम्हारे दायें गाल पर प्रहार करता है तो तुम अपना बायाँ गाल भी उसकी तरफ बढ़ा दो और यदि कोई तुम्हारी कोट छीन रहा है तो अपनी घड़ी भी उसे दे दो' मुझको असीम आनन्द दिये और मेरे दिमाग में शामल भट्ट की कविता .... फॉर ए बाउल' ताजा हो गयी। शामल भट्ट की ये पंक्तियाँ जो बचपन में ... उन्हें भावविभोर कर दी थीं, इसका जिक्र उनकी आत्मकथा में भी आता है। इसकी पुनराभिव्यक्ति से यह बात जाहिर होती है कि इन पंक्तियों का उन पर 'सरमन ऑन दी माउंट' जैसा ही प्रभाव पड़ा था। इस तरह, 'सरमन ऑन दी माउंट' (ईसा के उपदेश) ने एक अर्थ में केवल उनके उस अंगारावशेष को पुनर्जीवित कर दिया जो पहले से उनके हृदय में शान्त पड़ा था। शामल भट्ट की पंक्तियाँ लगभग यथा निम्नलिखित हैं :

'एक कटोरा पानी के लिए अच्छा-सा भोजन लाओ;
कृपाशील अभिवादन हेतु श्रद्धा से तू सिर झुकाओ;
हो रकम छोटी तब भी, स्वर्ण के साथ वापस लौटाओ;
यदि तेरे जीवन का उद्धार हो तो जीवन रोकता नहीं है;
इस तरह, बुद्धिमान के कर्म और वचन सम्मान देते हैं,
हर छोटी सेवा का वे दस गुना पुरस्कार देते हैं।
लेकिन, सच्चा महान व्यक्ति सभी मनुष्यों का एक
मानता है, और प्रसन्नता के साथ बुराई के बदले
अच्छाई कर दिखाते हैं।'

गांधी पर बाइबिल के नवविधान एवं अन्य पश्चिमी विचारकों के प्रभाव को उद्धृत करते हुए रोमा रोलां लिखते हैं : 'एक अँग्रेज पादरी ने जब (25 फरवरी 1920 को) गांधी से यह पूछा कि आप पर किन पुस्तकों का सबसे ज्यादा प्रभाव पड़ा है, तो गांधी ने जवाब दिया, 'बाइबिल के नवविधान का।' और आगे गांधी रस्किन और टॉल्सटाय का उल्लेख करते हैं। 'गांधी के नैतिक धर्म के अन्तिम शब्द उक्त नवविधान से उद्धृत हैं, तथा वह दावा करते हैं कि सत्याग्रह का इलहाम उन्हें 'सरमन ऑन दी माउंट' को पढ़ने के बाद हुआ। जब पादरी ने विस्मय में यह पूछा कि क्या आपने इस तरह का सन्देश किसी हिन्दू धर्मशास्त्र में नहीं देखा है, तो गांधी का जवाब था - श्रीमद्भागवत गीता के प्रति मेरी बड़ी श्रद्धा है, मैं उसकी प्रशंसा करता हूँ। उससे मुझे प्रेरणा और मार्गदर्शन मिला है, लेकिन सत्याग्रह का रहस्य बाइबिल के नवविधान से ही स्पष्ट हुआ है।' वह

कहते हैं, जब मुझे इलहाम हुआ और फिर गीता ने उस इलहाम को सम्पुष्ट कर दिया तो काफी प्रसन्नता हुई। गांधी यह भी कहते हैं, टॉल्सटाय का यह आदर्श था कि भगवान का राज्य हमारे अन्दर होता है। इस आदर्श ने मुझे अपने निजविश्वास को एक वास्तविक सिद्धान्त में बदलने में मेरी मदद की।'

उनका मन सभी समकालीन महान नैतिक विचारों के लिए एक गलन पात्र बन गया था। उन्हों पैगम्बर के जीवन को कार्लाइल के 'हीरो एंड हीरो- वर्शिप' में भी पढ़ा और पैगम्बर मोहम्मद की महानता, बहादुरी और उनके अतिसरल जीवन से काफी प्रभावित हुए। लेकिन, दक्षिण अफ्रीका में रहते हुए वह इस्लाम के सम्पर्क में भी आये जहाँ उनके मुसलमान अन्तरंग मित्रों की संख्या काफी थी। यद्यपि गांधी के अन्दर ईसा और उनके उपदेशों के प्रति बहुत ज्यादा सम्मान था, वह ईसाइयत कबूल करवाने के तमाम प्रयासों को हमेशा झिड़क देते थे। उनका मन सभी धर्मों में सामान्य सन्देश की खोज करता था। वह कभी उस सम्प्रदाय की खोज में नहीं रहे जो अन्य धार्मिक विचारों को बाहर कर देने का प्रयास करते थे। वह एडवर्ड मायटलैंड के एसोटेरिक ईसाई यूनियन (अन्तरंग ईसाई संघ) से अपने जुड़ाव के कारण ईसाइयत के बहुत नजदीक आ गये। मायटलैंड ने अपने दो प्रकाशनों 'दी परफेक्ट वे' (पूर्ण मार्ग) और 'दी न्यू इंटरप्रेटेशन ऑफ दी बाइबिल' (बाइबिल की नयी व्याख्या) को गांधी के पास भेजा। 'पूर्ण मार्ग' का उपशीर्षक 'ईसा का मन्तव्य' तीन स्थितियों को स्थापित करने का प्रयास करता था। पहली, यह कि ईसाइयत के धर्म सिद्धान्त और प्रतीक अन्य और प्राचीन धार्मिक प्रथाओं के सिद्धान्त और प्रतीक के समान ही हैं। दूसरी, यह कि धार्मिक आस्था का उचित तल वहाँ नहीं होता है जहाँ कि चर्च ने इसे जगह दी थी अर्थात ऐतिहासिक परम्परा की समाधि में नहीं होता है बल्कि मनुष्य के मन और हृदय में होता है। तीसरी, यह कि इस तरह सम्मानित और सुव्याख्यायित ईसाई धर्मसिद्धान्त मनुष्य के आध्यात्मिक इतिहास के तथ्यों को वैज्ञानिक यथार्थता के साथ प्रस्तुत करता है... गांधी को वह पुस्तक इतनी पसन्द आयी कि उन्होंने निम्नलिखित शीर्षक के साथ डरबन न्यूजपेपर में एक विज्ञापन दे दिया;

मो.क. गांधी

अभिकर्ता, अन्तरंग ईसाई संघ और शाकाहार समाज

उक्त विज्ञापन के साथ उन्होंने सम्पादक को एक पत्र लिखा जिसमें लिखा था :

'मैं जिन तथ्यों को विचारार्थ निवेदित कर रहा हूँ, ये सभी उन भौतिकवादी प्रवृत्तियों से वापसी के स्पष्ट संकेत हैं, इससे न केवल ईसा के निर्मल अन्तरंग उपदेशों के प्रति बल्कि बुद्ध, जरथुष्ट और मुहम्मद के उपदेशों के प्रति भी हमें अत्यन्त निर्दयतापूर्ण ढंग से स्वार्थी बना दिया है। ये ऐसे पैगम्बर हैं जिनका सामान्यतया यह शिष्ट दुनिया गलत पैगम्बरों के रूप में भर्त्सना नहीं करती है। ईसा और उक्त अन्य पैगम्बरों के उपदेश एक-दूसरे के पूरक हैं, इसकी जानकारी दिया जाना शुरू हो रहा है।'

अन्तरंग ईसाई संघ ने गांधी से अपील की, क्योंकि यह उसी चीज को प्राप्त करने का प्रयास कर रहा था जिसके लिए गांधी भी प्रयासरत थे अर्थात अनेक धर्मों के सामान्य नैतिक उपदेशों को प्राप्त करने का प्रयास। धर्म की बाबत उनका विचार अपवर्जक होने की बजाय अभिवर्तक था। धार्मिक सिद्धान्तों का अतीत के पृथक्कृत समुदायों में विकास हो चुका था तथा उनका निर्माण स्थानीय विशेषताओं से हुआ था। इसने उन्हें विभिन्न सांस्कृतिक परिवेश से आने वाले विचारों के लिए अभेद्य बना दिया। ये धार्मिक सिद्धान्त एक ऐसे युग के लिए अनुपयुक्त थे जहाँ अनेक समुदाय उस अतीत की दुनिया से बिल्कुल भिन्न दुनिया में रहते थे और परस्पर एक-दूसरे पर प्रभाव डालते थे। प्राचीन काल में भी लोगों के वृहत्तर क्षेत्र की तरफ बहिष्कार वृत्ति से संग्रहणशीलता में क्रमिक परिवर्तन ध्यानाकर्षी था। यहूदी धर्म केवल यहूदियों तक ही सीमित था। ईसाइयत ने एक कदम आगे बढ़कर यहूदियों और मूर्तिपूजकों को भी गले लगाने का प्रयास किया। लेकिन, इसके धर्म सिद्धान्त की प्रवृत्ति ईश्वरीय कृपा से गैर-ईसाइयों को बाहर करने की थी। साथ ही, ईसाइयत सदियों तक, अत्यन्त साम्प्रदायिक, असहिष्णु और हिंस्र बनी रही।

लेकिन, इसका यह चरित्र अपने मौलिक उपदेशों के ठीक विपरीत था। गांधी के लिए ईसा के मूल उपदेश बहुत

प्रेरणादायक थे। लेकिन, जिस संस्थागत ईसाइयत को इस मूल उपदेश की जगह स्कॉलेस्टिक दर्शन के रूप में प्रस्थापित किया गया था, वह गांधी को काफी संकीर्ण और कच्चा लगा था। ऐसा बौद्ध और उपनिषद के महान दार्शनिक साहित्य से परिचित किसी भी भारतीय को लगा होता। लुईस फिशर गांधी के साथ हुई अपनी एक वार्ता का जिक्र करते हैं। उक्त वार्ता से यह बात साफ हो जाती है कि आखिर गांधी क्यों ईसा के उपदेश और प्रचलित ईसाई विश्वास के बीच अन्तर करने के लिए इतना उत्सुक थे। उन्होंने लिखा है :'मैं जब 1946 ई. में गांधी के साथ ठहरा था तो उन्होंने अपने इस विचार पर थोड़ा प्रकाश डाला था। उन्होंने बतलाया कि पॉस एक यूनानी थे, यहूदी नहीं थे। उनमें वक्तृता विषयक प्रतिभा थी, एक द्वन्द्वात्मक विचार था और ईसा का उन्होंने गलत वर्णन किया था। ईसा में एक महान शक्ति थी, प्रेम की शक्ति। लेकिन, ईसाइयत जब पश्चिम की तरफ गयी तो इसका रूप विकृत हो गया। वहाँ यह राजाओं का धर्म बन गया।'

अन्तिम वाक्य में वह एक बड़े ऐतिहासिक सत्य का पर्दाफाश करते हैं जिसकी अनदेखी ईसाई और गैर-ईसाई समान रूप से करते आ रहे थे। रोमन साम्राज्य में ईसाइयत अईसाई कारण से कॉन्सटेंटाईन के धर्म-परिवर्तन के जरिये एक राज्यधर्म बन गयी। कॉन्सटेंटाइन जब विजय अभियान पर था तो उसके पास एक सपना था कि वह जो युद्ध लड़ने जा रहा है उसमें उसकी विजय होगी, यदि वह क्रॉस को अपना झंडा बना ले। उसने उसी अनुसार कार्य किया और विजय हासिल की। इस घटना ने उसे ईसाइयत के उस गुण का कायल बना दिया। लेकिन, वह एक सूर्योपासक था और तुरन्त अपने पहले वाले भगवान को नहीं छोड़ पाया। अत: कुछ समय तक एक सहराज्य चलता रहा, क्योंकि उसके सिक्कों पर एक तरफ सूर्य और दूसरी तरफक्रॉस अंकित था। आगे चलकर उस सम्राट ने अपनी पूरी निष्ठा ईसा के प्रति समर्पित कर दी। रक्त का वह मूल धब्बा यूरोपीय ईसाइयत के सम्पूर्ण विकास को बदरंग करता रहा।

1927 ई. में कोलम्बो में वाई.एम.सी.ए. का सम्मेलन हुआ। उक्त सम्मेलन को संबोधित करते हुए गांधी ने अपनी स्थिति पूरी तरह से स्पष्ट कर दी। गांधी ने कहा, 'यदि उस समय मुझे केवल 'सरमन ऑन दी माउंट' का सामना पड़ा, तो इसकी मेरी अपनी व्याख्या है। मुझे यह कहने में हिचक नहीं है कि – हाँ, मैं एक ईसाई हूँ।... लेकिन, नकारात्मक रूप से मैं आपसे कह सकता हूँ कि ईसाइयत के बारे में जो कहा जाता है, उसमें ज्यादातर 'सरमन ऑन दी माउंट' का नकार है। कृपया मेरे शब्दों को चिह्नित करें। वर्तमान समय में मैं ईसाई चरित्र के बारे में नहीं बोल रहा हूँ। मैं ईसाइयत के उस ईसाई विश्वास के बारे में बोल रहा हूँ जो पश्चिम में प्रचलित है।''

गांधी मलबे को अलग करने वाले ईसा के आवश्यक सन्देश के केन्द्रक को भेदने का प्रयास कर रहे थे। यही एकमात्र रास्ता था जिसमें यह शाश्वत नैतिक संहिता के अंश का निर्माण कर सकता था। बिशप कॉलेज, कोलकाता के व्याख्याता और सीरियाई ईसाई एस. के. जॉर्ज ने अपनी पुस्तक 'गांधी ज चौलेंज टू क्रिश्चियनिटी' में यह तर्क दिया, ईसाइयत में दूसरे धर्मों के आदर्शों एवं विश्वासों के प्रति अपने रुझान में पुनर्विचार करने की जरूरत है, तथा मैं दूसरे विश्वासों तक विनम्रता के साथ पहुँच बनाने वाली ईसाइयत को पसन्द करता हूँ। एस. के. जॉर्ज को गैर-ईसाई गांधी के विचार से सहमति जताने और अपनी व्याकुलता को स्पष्टत: स्वीकार करने के लिए गिरजाघर प्राधिकार का कोपभाजन बनना पड़ा। लेकिन, इससे यह भी जाहिर हुआ कि परिवर्तन की हवा अब बहने वाली है। भक्त ईसाइयों के बीच स्वाभाविक रूप से गांधी जी ने उन अनेक लोगों को परिवर्तन के लिए तैयार कर लिया जो यह समझते थे कि गांधी के विचार ही ईसाई जीवन के काफी नजदीक हैं। मॉर्टिन लूथर किंग सरीखे उनमें से कुछ लोग गांधीवादी विचारों के साथ चलने वाले महान आन्दोलनों के नेता बन गये। गांधी ने अपनी सार्वभौमिकता को दुहराते हुए 1930 ई. में अपने आश्रम के सहवासियों के मार्ग निर्देशन हेतु

अन्तिम वाक्य में वह एक बड़े ऐतिहासिक सत्य का पर्दाफाश करते हैं जिसकी अनदेखी ईसाई और गैर-ईसाई समान रूप से करते आ रहे थे। रोमन साम्राज्य में ईसाइयत अईसाई कारण से कॉन्सटेंटाईन के धर्म-परिवर्तन के जरिये एक राज्यधर्म बन गयी।

यरवदा जेल से लिखे जाने वाले अपने साप्ताहिक पत्रों में से एक पत्र में लिखा: 'सभी तरह आस्थाएँ सत्य के प्रकटीकरण की रचना करती हैं। लेकिन, सभी अपूर्ण हैं और इनमें गलती करने की गुंजाइश है। दूसरे की आस्थाओं के सम्मान का मतलब यह नहीं है कि हम उनकी गलतियों पर ध्यान नहीं दें। हमें अपनी आस्था की त्रुटियों के प्रति सजग रहने की जरूरत है। हमें इसे उसी तरह से नहीं छोड़ देना चाहिए, बल्कि उन त्रुटियों को दूर करना चाहिए। सभी धर्मों को समान नजर से देखते हुए बेझिझक हमें दूसरे धर्मों की स्वीकार्य चीजों को अपने धर्म के अन्दर लाने का प्रयास करना चाहिए। ऐसा करना हमारा कर्तव्य बनता है।'

इस देश का कोई भी गरीब, चाहे वो जन्म से कुछ भी हो, मुझे उसका जीवन स्तर सुधारना है, उसे गरीबी से बाहर निकालना है। इस देश का कोई भी युवा, चाहे उसकी जाति कुछ भी हो, मुझे उसके लिए रोजगार के, स्वरोजगार के नए अवसर देने हैं। इस देश की कोई भी महिला, चाहे उसकी जाति कुछ भी हो, मुझे उसे सशक्त करना है, उसके जीवन से मुश्किलें कम करनी हैं। उसके सपने जो दबे पड़े हैं ना, उन सपनों को पंख देने हैं, संकल्प से भरना है और सिद्धि तक उसके साथ रह करके मैं उसके सपने पूरे करना चाहता हूं।

गांधी एक हिन्दू होते हुए भी प्रायः एक ईसाई, एक मुसलमान और एक यहूदी बन जाते थे, क्योंकि उन्हें इनके मौलिक तत्त्वों में कोई अन्तर दिखाई नहीं देता था। ईसाइयत, इस्लाम और हिन्दुत्व इत्यादि सरीखे पारम्परिक धर्मों के प्रति अपने सम्मान भाव के बावजूद गांधी का सबसे ज्यादा लगाव उस नयी नैतिक संहिता के साथ था जिसे वह स्वयं एवं उनके पूर्ववर्ती और समकालीन सन्त प्रकट कर रहे थे। उनके समय में भी जब मूल्यों के महान नये रूप प्रकट हो रहे थे, इतिहास के सभी नोडल बिन्दुओं पर उन समस्याओं का निराकरण ढूँढ़ने वाली अनेक सदृश आत्मायें उसी तरीके से सक्रिय थीं। उनमें से कुछेक ने गांधी को खोज करने के लिए प्रेरित किया तथा उन्हें दूसरे की जानकारी बाद में हुई। गांधी के माध्यम से उन्होंने अपने विचारों की एक स्पष्ट अभिव्यक्ति प्राप्त की। गांधी के अनुसार, धर्म का सार मानवता की सेवा में तथा समाज से अन्याय और पीड़ा के निर्मूलन में निहित होता है। इस दृष्टिकोण से पुराने धर्म सबसे बढ़िया मार्गपट्ट हो सकते थे। कार्य करने का ठोस रूप समकालीन जीवन में एक व्यक्ति जिन नानाविध समस्याओं का सामना करता है, उसमें अर्थात एक औद्योगिक समाज की वास्तविक जीवन स्थिति में प्रकट किया जाना था। उस स्थिति में संक्षेपण मानवीय कार्यों में वाणिज्य की सर्वोच्च शक्ति इसकी विद्यालय आचार संहिता के द्वारा किया जाता है। यही नयी नैतिकता बन गयी है। जैसा कि हम पूर्व में देख चुके हैं, यह धर्म के सभी पिछले सिद्धान्तों के विरुद्ध हो जाता है। स्वाभाविक रूप से, गांधी का जब पहली बार रस्किन के श्अन टू दि लास्टश से परिचय हुआ, वह उसी वक्त उससे मोहित हो गये थे। यह पुस्तक इस नयी नैतिकता की एक समीक्षा थी।

गांधी को इस पुस्तक में कुछ वैसी चीज मिल गयी जिसकी वह अचेतन रूप से यूरोपीय सभ्यता के सम्पर्क में आने के समय से ही तलाश कर रहे थे। वह अपनी आत्मकथा में रस्किन की इस पुस्तक का अपने ऊपर पड़े प्रभाव को निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त करते हैं : 'मैंने एक बार इस पुस्तक को पढ़ना शुरू किया तो इसे बीच में छोड़ पाना असम्भव हो गया। इसने मुझे अपनी गिरफ्त में ले लिया। जोहांसबर्ग से डरबन की यात्रा चौबीस घंटों की थी। गाड़ी वहाँ शाम में पहुँची। मैं उस रात सो नहीं पाया। इस पुस्तक के आदर्शों के अनुसार मैंने अपने जीवन को बदलने का संकल्प ले लिया।'

गांधी के अनुसार उस पुस्तक के निम्नलिखित मौलिक सिद्धान्त थे :

1. यह कि, व्यक्ति का भला सबके भले में निहित होता है।

2. यह कि, वकील और नाई के काम का मूल्य समान है। सभी को अपने काम से जीविका कमाने का अधिकार है।

3. यह कि, श्रमिक का जीवन ही एक ऐसा जीवन है जो जीने योग्य है।

'इनमें से पहले वाले को मैं जानता था। दूसरे वाले का मैं अस्पष्ट रूप से अहसास कर चुका था। तीसरे वाले से मैं अनभिज्ञ था। लेकिन, 'अन टू दि लास्ट' ने यह साफ कर दी कि दूसरा और तीसरा, पहले वाले में ही निहित हैं। मैं भोर में जगा और इन सिद्धान्तों को व्यवहार में ढालने के लिए तैयार हो गया।'

19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में पूँजीवादी व्यवस्था की काफी समीक्षाएँ हो रही थीं। इसी दौरान समाजवादी आन्दोलन का विकास भी हो रहा था। इसी सदी के साठ के दशक से मार्क्स अपना विशद ग्रन्थ 'दास कैपिटल' लिखने में व्यस्त थे। यद्यपि पूँजीवाद की अधिकांश समाजवादी समीक्षाओं में एक नैतिक दृष्टिकोण अन्तर्निहित था, ऐसी सभी समीक्षाओं का रुझान वैज्ञानिक था अर्थात वे विश्लेषणात्मक रूप से यह दिखाने का प्रयास कर रहे थे कि पूँजीवाद में इसके अन्त का बीज मौजूद है। कुछ लोगों की मान्यता थी कि पूँजीवाद अत्योत्पादन के संकट से दम तोड़ देगा, तो कुछ लोग इस विचार के थे कि लाभ की पतनशील दर से यह कयामत आ जाएगी। तथापि, कुछ ऐसे लोग भी थे जो सोचते थे कि उत्पादन के पूँजीवादी तरीके में जन्मजात अयोग्यता और अशान्ति है जो पूँजीवादी व्यवस्था के लिए खतरनाक साबित होगी। प्रायः उपर्युक्त विचारों में एक से अधिक को उन्हीं सिद्धान्तकारों द्वारा स्थापित किया गया। लेकिन, बहुत कम लोगों ने इस उत्पादन की प्रथा के पीछे के उद्देश्य के नीति-सिद्धान्त पर सवाल उठाया। लाभोद्देश्य या भौतिक प्राप्ति का उद्देश्य आर्थिक आलोचकों द्वारा न केवल प्राकृतिक समझा गया बल्कि अनुकूल भी माना गया। मार्क्सवादियों द्वारा यह समझा गया, मसलन यह कि इसी उद्देश्य से धन और गरीबी के बीच बहुत ज्यादा ध्रुवीकरण हो जाएगा और यह पूँजीवादी व्यवस्था को उखाड़ फेंकने हेतु गरीब मजदूरों को संगठित होने के लिए बाध्य कर देगा और इस तरह से समाजवाद की स्थापना होगी। ये सवाल कभी नहीं किये गये (1) क्या सम्पत्ति का सामाजिक स्वामित्व लागू हो जाने के बाद भी वैसी ही संग्रहवृत्ति से प्रेरित मजदूर समाज और दूसरे लोगों के साथ धोखा देना शुरू कर देंगे? (2) मार्क्स ने जिस परायेपन की समस्या के बारे में इतना प्रभावशाली ढंग से लिखा, बड़े उद्योगों में मजदूर परायेपन की इस समस्या का समाधान कैसे करेंगे क्योंकि यह समस्या बड़े आधुनिक उद्योगों की संरचना में स्वाभाविक है? (3) आधुनिक उद्योगों से प्रदूषण फैलता है, औद्योगिक समाज इस प्रदूषण की समस्या का समाधान कैसे करेगा? क्या होगा, यदि पूँजीवादी व्यवस्था किसी तरह अपने संकटों का प्रबन्ध करना जान पाती है तथा आन्दोलनकारी विप्लवों की रोकथाम करने के उद्देश्य से मजदूरों को बर्दाश्त करने लायक जीवनावस्थाएँ मुहैया कराना भी सीख जाती हैं? अथवा, यह सवाल भी कि क्या होगा, यदि पूँजीवादी व्यवस्था समाज के एक बड़े भाग की अत्यन्त वंचना की अवस्थाओं के तहत भी समाज पर अपनी पकड़ बनाने का प्रबन्ध कर लेती है?

इन सिद्धान्तकारों का इस व्यवस्था की तर्कशक्ति से सरोकार था, न कि इसके नीति-नियम से। यदि इसने जीवित रहने की अपनी क्षमता को साबित किया तो यह इस व्यवस्था का अपना औचित्य था। इसके कारण अनेक लोगों ने तकनीकी निश्चयवाद को स्वीकार किया जो इस व्यवस्था के अपरिहार्य अंग के रूप में अपने अनौचित्य को उचित ठहराते हुए विशेष तकनीक का सम्बन्ध नैतिक अभिवृत्ति से जोड़ते हैं। यद्यपि रस्किन उम्र में मार्क्स से काफी बड़े थे, मार्क्स जिस समय अपने ग्रन्थ पर काम कर रहे थे, ठीक उसी समय इस व्यवस्था से सम्बन्धित रस्किन की समीक्षा प्रकाशित हुई। मार्क्स और अन्य समाजवादी विचारक जो इस व्यवस्था की नैतिक समीक्षा का मजाक उड़ाते थे, इनके विपरीत रस्किन ने ऐसी नैतिक समीक्षा को समुचित ढंग से अंगीकार किया।

संपर्कः

ग्राम एवं पोस्टः मनिका, जिला मुजफ्फरपुर, बिहार-845431

महात्मा गांधी की विश्व-दृष्टि में मितव्ययिता

'यदि मैं कोई ऐसी वस्तु लेता हूँ और रखता हूँ, जिसकी मुझे किसी तात्कालिक उपयोग के लिए आवश्यकता नहीं है, तो मैं उसकी अन्य से चोरी करता हूँ। यह प्रकृति का एक निरपवाद मूल नियम (सिद्धान्त) है कि वह प्रतिदिन उतना ही उत्पन्न करती है, जितना हमें चाहिए। और, यदि प्रत्येक व्यक्ति, जितना उसे चाहिए, उतना ही ले, अधिक नहीं, तो संसार में कोई दीन न रहे और कोई व्यक्ति भूख से न मरे... जिनके पास सम्पत्ति का संचय है, उनसे मैं उसे छीनना नहीं चाहता। लेकिन मैं यह अवश्य ही कहना चाहता हूँ कि हममें से जो लोग प्रकाश की खोज में प्रयत्नशील हैं, उन्हें व्यक्तिगत रूप में इस नियम का पालन करना चाहिए।' -**महात्मा गांधी**

मितव्ययिता न केवल भारतीय दर्शन और संस्कृति का एक प्रमुख सन्देश है, अपितु मानव के लिए वह अनुकरणीय आदर्श भी है। ऐसा आदर्श, जो जीवन में शान्ति और वास्तविक समृद्धि का मार्ग प्रशस्त करता है। यह आदर्श जीवन में केवल बचत-सम्बन्धी दृष्टिकोण का प्रकटकर्ता ही नहीं है। मितव्ययिता जीवन में सरलता, संयम, त्याग, आत्म-नियंत्रण एवं अनुशासन की प्रेरक है। मितव्ययिता, इस प्रकार, एक अति श्रेष्ठ मानवीय गुण है। यह मानव को समष्टि के प्रति उसके कर्त्तव्यों का स्मरण कराती है; अपरिहार्य मानवीय उत्तरदायित्वों के निर्वहन का आह्वान करते हुए इस हेतु व्यक्ति को अनुकरणीय मार्ग प्रदान करती है। श्रीमद्भगवद्गीता में प्रकट 'सर्वभूतहिते रता' जैसा उल्लेख (12: 4) एवं 'आर्जवम्ष्' 'त्यागः' और 'अलोलुप्त्वं' (16: 1-6) जैसे शब्द वृहद् परिप्रेक्ष्य में मितव्ययिता को केन्द्र में रखते हुए समष्टि के प्रति मानव के कर्त्तव्य को सामने लाते हैं। चौबीसवें तीर्थंकर महावीर ने इच्छाओं के परिसीमन, व्यक्तिगत उपभोग में संयम और धन-सम्पदा के समाज के हित हेतु सदुपयोग का जो वृहद् कल्याणकारी प्रस्ताव मानवता के समक्ष रखा, वह इसी वास्तविकता का प्रकटीकरण था।

मितव्ययिता आर्थिक विषमताओं को दूर करने का एक अनुकरणीय सूत्र है; साथ ही, यह बड़े पैमाने पर सुखी तथा स्वस्थ

डॉ० रवीन्द्र कुमार

जीवन का आधार भी है। यह अविभाज्य समग्रता आधारित सार्वभौमिक नियम के पालन का मार्ग है। महात्मा गांधी का उद्धृत वक्तव्य इसी स्थिति को स्पष्ट करता है। मानव-जीवन में मितव्ययिता की महत्ता, प्रासंगिकता और आवश्यकता को सामने लाता है। मितव्ययिता को जीवन में अपनाने का आह्वान करता है। इस हेतु महात्मा गांधी जीवन की आवश्यकताओं को नियमित करने की प्रबलेच्छा प्रकट करते हैं। वे धन-सम्पत्ति के अर्जन, उपयोग, विनिमय और वितरण आदि विषयों को समेटती हुई अर्थविद्या, व कर्त्तव्यबद्ध नैतिक दायित्व को समर्पित नीतिविद्या के आवश्यक रूप से साथ-साथ रहने की कामना भी करते हैं।

धनोपार्जन - आर्थिक समृद्धि प्राप्ति में व्यक्ति की लगन, बुद्धिमत्ता, दक्षता तथा गम्भीरता आदि की बड़ी भूमिका होती है। कोई इन गुणों के बल पर धन-सम्पत्ति अर्जित करे, वह आर्थिक सम्पन्नता प्राप्त करे, तो इसमें कुछ भी अनुचित नहीं है। विपरीत इसके, अर्जित धन-सम्पत्ति अथवा प्राप्त की गई सम्पन्नता के बल पर किसी सजातीय को नियन्त्रित या विवश करना, न केवल पूर्णतः अनुचित और अन्यायपूर्ण है, अपितु मानवता के मूल सिद्धान्त के विरुद्ध कृत्य भी है। यह सार्वभौमिक नैतिकता के सिद्धान्त के सर्वथा विरुद्ध है। जगत-व्यवस्था के सुचारु रूप से संचालनार्थ सार्वभौमिक नैतिकता का पालन अपरिहार्य है।

मानवता का मूल सिद्धान्त धन-सम्पदा, संसाधनों और अर्जित सम्पन्नता के सदुपयोग के साथ ही संयम, सौहार्द, उदारता और अहंकार-मुक्त जीवन जीने के लिए मानव का आह्वान करता है। गांधीजी की अर्थविद्या और नीतिविद्या के साथ-साथ आगे बढ़ने की कामना का यही अभिप्राय है। यह मानव-केन्द्रित है। इसलिए, यह प्राथमिकता से सजातीयों और सामान्यतः प्राणिमात्र के प्रति सक्रिय सद्भावना रखने और सबके साथ एकरूपता स्थापित करने की मानव से प्रबल अपेक्षा रखता है। निरन्तर परस्पर मानवीय सहयोग, और जिन्हें आवश्यकता हो, उनकी किसी भी प्रकार के भेदभाव के बिना सदैव ही सहायता करने की तत्परता की कामना करता है। मानवता के मूल सिद्धान्त का आधार अन्ततः एक ही अविभाज्य समग्रता है, जो स्वयं सार्वभौमिक एकता का निर्माण करती है और परस्पर निर्भरता की वास्तविकता को सामने लाती है।

महात्मा गांधी, इसीलिए, मितव्ययिता की सर्वकालिक महत्ता को सामने लाते हैं। जीवन में मितव्ययिता के अंगीकरण से किसी एक समाज या राष्ट्र ही नहीं, अपितु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर वृहद् सौहार्द व सहयोग के साथ ही विश्व-शान्ति की सम्भावनाओं को भी वे उजागर करते हैं। इस हेतु महात्मा गांधी मानवीय कर्त्तव्य केन्द्रित सत्यता को प्रस्तुत करते हैं। मितव्ययिता केन्द्रित और व्यक्ति के सामाजिक व मानवीय कर्त्तव्यों के निर्वहन हेतु प्रतिबद्धता प्रकट करते सरलता-सादगी, त्यागशीलता और उदारता जैसे उनके विचार और अति विशेष रूप से उनका संरक्षकता-सम्बन्धी दृष्टिकोण इस सम्बन्ध में एक मील के पत्थर के समान है। वह दृष्टिकोण आज, जब विश्वभर में अठहत्तर करोड़ से

धनोपार्जन - आर्थिक समृद्धि प्राप्ति में व्यक्ति की लगन, बुद्धिमत्ता, दक्षता तथा गम्भीरता आदि की बड़ी भूमिका होती है। कोई इन गुणों के बल पर धन-सम्पत्ति अर्जित करे, वह आर्थिक सम्पन्नता प्राप्त करे, तो इसमें कुछ भी अनुचित नहीं है। विपरीत इसके, अर्जित धन-सम्पत्ति अथवा प्राप्त की गई सम्पन्नता के बल पर किसी सजातीय को नियन्त्रित या विवश करना, न केवल पूर्णतः अनुचित और अन्यायपूर्ण है, अपितु मानवता के मूल सिद्धान्त के विरुद्ध कृत्य भी है। यह सार्वभौमिक नैतिकता के सिद्धान्त के सर्वथा विरुद्ध है।

भी अधिक लोग भुखमरी के शिकार हैं तथा लगभग बहत्तर करोड़ जन गरीबी रेखा के नीचे हैं, न केवल प्राथमिकता से विचारणीय है, अपितु प्रासंगिक व अनुकरणीय भी है।

संरक्षकता-सम्बन्धी अपने विचार के सम्बन्ध में महात्मा गांधी ने 3 जून, 1939 को हरिजन में लिखा, 'मान लीजिए कि मुझे उद्योग-व्यवसाय से अथवा विरासत में प्रचुर मात्रा में (धन) सम्पत्ति मिल गई। ऐसी स्थिति में मुझे यह जानना चाहिए कि वह सब सम्पत्ति मेरी नहीं है, अपितु मेरा उस पर इतना ही अधिकार है कि जिस प्रकार अन्य लाखों जन जीवन व्यतीत करते हैं (अपनी दिनचर्या चलाते हैं), उसी प्रकार मैं भी सम्मान के साथ अपना जीवन जीऊँ। मेरी शेष सम्पत्ति पर राष्ट्र का अधिकार है और उसी के हितार्थ उसका उपयोग होना आवश्यक है।'

अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए वे कहते हैं कि जिनके पास धन-सम्पदा, संसाधन अथवा भूमि है, वे अपने पास इन सबके होने के बाद भी स्वयं को धन-सम्पदा, भूमि अथवा संसाधनों के संरक्षक समझें। ऐसे संरक्षक, जो अपने श्रम द्वारा धन-सम्पदा और भूमि को फलीभूत करने वाले श्रमिकों की अपने ही समान महत्ता स्वीकार करते हैं और ऐसे श्रमकर्ताओं की मूल आवश्यकताओं की सुनिश्चितता उनका परम कर्त्तव्य है, उसी भाँति जैसा कि स्वयं उनके अपने लिए।

इस प्रकार गांधीजी का संरक्षकता-सम्बन्धी विचार प्राथमिकता से सजातीयों के साथ सक्रिय सद्भावना का द्योतक है। सम्पूर्ण प्राणिजगत एक ही मूल से उत्पन्न है, इसलिए इस विचार की मूल भावना सर्वकल्याण है। आर्थिक विषमता को अधिकाधिक सम्भव न्यून स्तर पर लाना और, इस प्रकार, निर्धन-धनी के मध्य की खाई को पाटना है। श्रमिकों एवं पूँजीपतियों के मध्य के आन्तरिक संघर्षों को समाप्त कर कल्याणकारी अर्थव्यवस्था की स्थापना की दिशा में आगे बढ़ना है, जो अन्ततः स्वयं मितव्ययिता के वृहद् सिद्धान्त से जुड़ा पक्ष है। यह महात्मा गांधी के अहिंसा सिद्धान्त से भी जुड़ा है। उनके अहिंसक अर्थव्यवस्था विचार का आधार है, जो बलपूर्वक अथवा कानून द्वारा नहीं, अपितु सार्वभौमिक एकत्व की सत्यता की अनुभूति व अंगीकरण के माध्यम से स्वयं को सुधारने और एकाधिकार प्रवृत्ति से मुक्त अवस्था में कर्त्तव्य-निर्वहन का मार्ग प्रदान करता है। उत्तरदायित्व-निर्वहन के लिए स्वः अनुभूति और उसके आह्वान के अनुसार सजातीय समानाधिकार की रक्षा हेतु स्वेच्छापूर्वक उठाए जाने वाले कदम बलपूर्वक की जाने वाली किसी कार्रवाई अथवा विधायी प्रक्रिया से कहीं अधिक प्रभावकारी, कल्याणकारी और स्थाई होते हैं। मानव को स्वयं को सुधारने का अतिश्रेष्ठ मार्ग प्राप्त है और उसी के माध्यम से महात्मा गांधी उनके नियंत्रण वाले संसाधनों, अधिकृत भूमि अथवा धन-सम्पदा के कल्याणकारी सदुपयोग का आह्वान करते हैं।

अन्ततः गांधीमार्गीय संरक्षकता सिद्धान्त भी मानव-समानता विचार से जुड़ा है। अन्य सम्बन्धित पक्षों के साथ वैश्विक स्तर पर मानव-समानता विषय महात्मा गांधी के विचारों में प्रमुख ही नहीं था, अपितु यह उनके जीवन का मिशन था। महात्मा गांधी के संरक्षकता सिद्धान्त को इसी परिप्रेक्ष्य में देखना चाहिए; साथ ही, संयम, सादगी, त्याग व उदारता जैसी विशिष्टताओं से अभिन्नतः जुड़े मितव्ययिता-सम्बन्धी उनके विचार और इस हेतु आह्वान का, उनकी वैश्विक दृष्टि को केन्द्र में रखते हुए, इसी वृहद् सन्दर्भ में अध्ययन तथा विश्लेषण भी करना चाहिए।

(लेखक मेरठ विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति हैं)

संपर्कः 23बी, लेन-2, मानसरोवर, सिविल लाइन्स, मेरठ, उत्तर प्रदेश-250001

मो. 9319090160

गांधी और धर्म दृष्टि

डॉ इन्द्र नारायण रमण

गांधी की धर्म दृष्टि को समझने से पहले गांधी के मानव धर्म को समझना बहुत आवश्यक है। संस्कृत का एक श्लोक प्रचलित है 'धारयति इति धर्मः'। जो धारण किया जाता है वह धर्म है इसका मतलब यह है कि सबसे पहले हम एक इंसान हैं और इंसानियत ही हमारा वास्तविक धर्म है। बाद में हम एक सांस्कृतिक एवं सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप एक हिंदू –मुस्लिम–ईसाई या अन्य धर्म के मानने वाले हो सकते हैं। इस दूसरे स्वर के धर्म को अपनाने में भी कहीं से हमें कोई बुराई नहीं दिखती है, लेकिन सर्वप्रथम एक इंसान एवं मानव होने के नाते हमें सफलतापूर्वक अपने इंसानियत एवं मान्यता को मजबूत एवं पुख्ता करने पर ध्यान देना चाहिए। यहां सावधानी पूर्वक एक बात और समझने की जरूरत है कि अगर कोई विचार आपके इंसानियत एवं मान्यता के मार्ग में बाधक है तो वह एक सच्चा धर्म नहीं हो सकता और नहीं वह धार्मिक विचार आपके आत्मिक सुख प्रदान कर सकता है। लेकिन मेरा या अनुभव सिद्ध विचार है कि जब आप सर्वप्रथम अपने मानवीय गुणों को विकसित करने पर बल देते हैं तो उसे तराशने के लिए आपको कुरान शरीफ के आयत की भी जरूरत पड़ती है गीता के श्लोक की भी जरूरत पड़ती है साथ ही दुनिया के सभी अन्य धर्म के मूल उपदेश आपके एक पूर्ण मानव बनाने में बहुत उपयोगी एवं सहयोगी जान पड़ता है। इस गूढ रहस्य को समझने के बाद ही आप गीता रहस्य को समझ सकते हैं एवं भारतीय संस्कृति की मूल भावना 'वसुधैवकुटुंबकम' से अनुप्राणीत हो सकते हैं तभी आप एक सच्चा धार्मिक पुरुष कहलाने के अधिकारी हो सकते हैं। आपके धार्मिक विचार, आपके साथ–साथ इस जगत के लिए कल्याणकारी हो सकता है।

गांधी जी ने अपने समय के प्रमुख धर्म और दर्शनों का गहराई से अध्ययन किया था। संपूर्ण गांधीवांगमय में जब हम गांधी जी द्वारा पढ़े गए पुस्तकों की सूची देखते हैं तो आश्चर्यचकित रह जाते हैं। गांधी की दृष्टि में धर्म सनातन है और इस अर्थ में सत्य का आधार धर्म है, इसलिए परम सत्य को जानना ही परम धर्म है किंतु परम सत्य का ज्ञान मंत्र बुद्धि के द्वारा संभव नहीं है क्योंकि बुद्धि स्वयं उस परम सत्य का ही एक रूप है। परम सत्य क्या ज्ञान तो आत्मज्ञान की विशिष्ट साधना से ही संभव है।

गांधी की धर्म दृष्टि को समझने से पहले गांधी के मानव धर्म को समझना बहुत आवश्यक है। संस्कृत का एक श्लोक प्रचलित है 'धारयति इति धर्मः'। जो धारण किया जाता है वह धर्म है इसका मतलब यह है कि सबसे पहले हम एक इंसान हैं और इंसानियत ही हमारा वास्तविक धर्म है। बाद में हम एक सांस्कृतिक एवं सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप एक हिंदू–मुस्लिम– ईसाई या अन्य धर्म के मानने वाले हो सकते हैं।

आत्मसाधना के लिए शास्त्रों के स्वाध्याय और ईश्वर का सतत स्मरण तथा आंतरिक आध्यात्मिक अनुशासन का विकास ही मूलभूत है और वही सच्चे ज्ञान की साधना है।

गांधी जी का मानना था कि दुनिया भर के विविध धर्म जो मौजूद हैं और वह भी एक ही धर्म वृक्ष की विभिन्न आकार प्रकार वाली शाखाएं हैं। गांधीजी का यह प्रतिपादन वस्तुत: अधिकार भेद और पात्रता भेद की परंपरागत हिंदू शास्त्रीय व्याख्या का ही एक समकालीन प्रतिपादन है। गांधी जी मानते थे मैं एक सच्चा हिंदू हूं। इस प्रकार गांधी का मानना यह था कि सर्वधर्म पालन के द्वारा ही हम संसार के सभी अन्य धर्म का सच्चाई से पालन कर सकते हैं। हिंदुत्व की मान्यता यह है कि ईश्वर कण-कण में व्याप्त हैं सर्वव्यापी है इसलिए प्रत्येक व्यक्ति की आत्म सत्ता में भी परमसत्ता का तेज है। कोई भी व्यक्ति सम्यक साधना द्वारा ही उस तेज को जागृत कर ज्ञान प्राप्त कर सकता है। गुरु तो आवश्यक है किंतु सावधानी से सच्चे गुरु की तलाश करनी चाहिए। गांधी की दृष्टि में सत्य ही परम धर्म है और सत्य से बड़ा कोई धर्म नहीं है। सत्य ही सनातन धर्म है और इस सत्य से ही धर्म की वृद्धि होती है। गांधी का मानना है कि इस उपनिषद का पहला मंत्र हिंदू धर्म के विचार को अपने में समेटे हुए है।

संपूर्ण भागवत गीता यही पहले मंत्र का टीका है

इसका सार यह है कि संपूर्ण जगत ब्रह्म है और हम जो कुछ भी देखना अथवा चाहते हैं वह वस्तुत: ईश्वर का ही और ईश्वर से ही है। इसलिए हमें जीवन में जिसकी समुचित जरूरत है सिर्फ वही लेना चाहिए इसके अतिरिक्त और कुछ लेना चोरी है सिर्फ ऐसा जीवन ही जीने योग्य है जो ब्रह्म को समर्पित होकर जिया जाता है।

गांधी जी ने इस ब्रह्म समर्पण का अर्थ भली-भांति समझाया है और यह स्पष्ट किया है कि इस उपनिषद के पहले मंत्र का अर्थ यही नहीं है कि हम त्याग पूर्वक भोग और आनंद करें। गांधी जी ने कहा कि यह तो बहुत ही मामूली सिद्धांत थे और इसके लिए किसी गंभीर आध्यात्मिक व्याख्यान की जरूरत नहीं है। हर मां अपने बच्चों के लिए अपना सब कुछ त्यागने के लिए तैयार रहती है और वह असीम आनंद का अनुभव करती है। अपनी विशिष्ट इच्छाओं अथवा लक्षण के लिए शेष सब कुछ का त्याग सामान्य मानवीय त्याग वृत्ति है। अत: यह स्वयं में कोई बहुत बड़ा आध्यात्मिक गुण नहीं।

गांधी जी का मानना था कि परम सत्ता अद्वितीय है इसलिए सब धर्म एक है। इसी धर्म में उन्होंने भी धर्म वृक्ष की विविध शाखों वाली बात कही थी। इसका अर्थ यह नहीं है कि विविध पैगंबरों एवं धार्मिक प्रसिद्ध पुरुषों ने यह बात कही है बल्कि इसका अर्थ यह है कि किसी भी पैगंबर या प्रसिद्ध पुरुष की केवल वही बातें धर्म में है जो सनातन या शाश्वत सत्ता के अनुरूप है।

इस ब्रह्म दिशा के कारण ही गांधी जी राम नाम को सर्वोपरि मानते थे। राम के बारे में गांधी ने व्याख्या बहुत विस्तार से की है। उनका मानना है कि हिंदू धर्म में इतिहास मानवीय चिंतन और सत्य तीनों ऐसी सघनता से संबंध है। जिन्हें अलग-अलग करना संभव है इसलिए उनका यह कहना है कि ईश्वर के जितने भी नाम और रूप कहे जाते हैं उन सब को मैंने एक ही निराकार सर्वव्यापी राम के प्रतीक रूप में देखना सीखा है। इसलिए मेरे लिए सीता नाथ दशरथ पुत्र राजाराम वही सर्वव्यापक प्रभु है जिनका कण-कण में निवास है और जो सबके अंत:करण में विराजमान है और जिनका नाम लेने से दैहिक मानसिक और आध्यात्मिक सभी तरह के कष्ट तथा दुख दूर हो सकते हैं गांधी जी का पूर्ण निष्ठा से यह मानना था कि राम नाम समस्त रोगों की वास्तविक औषधि है सबसे बड़ी बात यह है कि आत्मविश्वास कभी मत खोना जब तुम्हारा अहम तुम पर हावी होना चाहे तब तुम घुटने के बल झुक कर भगवान से मदद की प्रार्थना करना। राम नाम अचूक रूप से मदद करता है। प्रार्थना पर वे निरंतर बोल देते थे और प्रार्थना उनके जीवन का अनिवार्य अंग था उनका यह कहना था कि मैं भोजन के बिना तो कुछ समय तक रह भी सकता हूं किंतु प्रार्थना विहीन जीवन एक क्षण भी मुझे पसंद नहीं है किंतु साथ ही गांधी जी का यह भी मानना था कि राम नाम के सच्चे अर्थ का प्रकाश ब्रह्मचर्य की साधना से ही संभव है जो जितना अधिक ब्रह्मचर्य की साधना करेगा उसके भीतर राम नाम का अर्थ उतना ही भाव प्रकाश होगा वह हृदय से स्वीकार करते हैं कि लाखों आदमियों द्वारा सच्चे दिल से एक लाल और एक लय में साथ गाई जाने वाली रामधुन की ताकत फौजी ताकत दिखावे से कई गुना अधिक होती है। गांधी जी की दृष्टि में प्रत्येक व्यक्ति में एक शक्ति संपन्न तेज पुंज भी है और पाप वासनाओं से भरा अंधकार सूत्र भी अत: आवश्यकता सिर्फ उसके भीतर के शुभ और दैविक तत्व को जागृत करने की है।

गांधी जी ने इस ब्रह्म समर्पण का अर्थ भली-भांति समझाया है और यह स्पष्ट किया है कि इस उपनिषद के पहले मंत्र का अर्थ यही नहीं है कि हम त्याग पूर्वक भोग और आनंद करें। गांधी जी ने कहा कि यह तो बहुत ही मामूली सिद्धांत थे और इसके लिए किसी गंभीर आध्यात्मिक व्याख्यान की जरूरत नहीं है। हर मां अपने बच्चों के लिए अपना सब कुछ त्यागने के लिए तैयार रहती है और वह असीम आनंद का अनुभव करती है।

संपर्क: गांधी भवन 32, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007

जीवनशैली, आध्यात्मिकता और वैचारिकता 'अब वैश्विक स्वास्थ्य का आधार'

अमित त्यागी

स्वास्थ्य पर चिंतन करते समय हम शारीरिक स्वास्थ्य को आधार मानते हैं। शरीर एक हार्डवेयर है जो सॉफ्टवेयर को सहारा देने के लिए बना है। शरीर का पूरा चक्र विचार रूपी सॉफ्टवेयर के इर्द गिर्द रहता है। विचार एक आध्यात्मिक पक्ष है जिसके अनुसार शरीर की गतिविधियां संचालित होती हैं। हमारे मनोवैज्ञानिक और चिकित्सक भी अब इस बात को स्वीकार कर रहे हैं मनुष्य की चिंतन शैली मे असंतुलन से प्राणों की गति प्रभावित होती है। इस असंतुलन का परिणाम सम्पूर्ण शरीर पर दुष्प्रभाव डालता है। प्रतिकूल मनोदशा मे खाया हुआ अन्न शरीर मे ठीक से पचता नहीं है जो आधि/मानसिक रोग पैदा करते हैं। ये आधि ही धीरे धीरे बढ़कर व्याधि/शारीरिक रोग पैदा कर देते हैं। भारतीय जीवन शैली (आयुर्वेद) में इसलिए ही विचारों की शुद्धता का महत्व बताया गया है। योग वशिष्ठ 6/1/81/30-37 के अनुसार चित्त मे उत्पन्न विकार से ही शरीर मे रोग उत्पन्न होते हैं। शारीरिक क्षोभ की स्थिति मे नाड़ियों के परस्पर संबंधता में विकार आ जाते हैं, जो रोग का कारण बनते हैं। मनोस्थिति और शरीर के रोगों पर डॉ क्रेन्स डेलमार और डॉ राओ द्वारा शोध किए गए थे। उनके शोधों के द्वारा कुछ रोचक परिणाम सामने आए थे। उनके शोध का सार था कि स्वस्थ मन होने पर तन मे कोई रोग नहीं हो सकता है। उनके कुछ निष्कर्ष यूं थे। हिस्टीरिया जैसे रोग चोर उचक्के, हताश-निराश और दुष्ट प्रवृत्ति के लोगों को होता है। दूसरों मे दोषारोपण एवं छिद्र-अन्वेषण करने वाले लोगों मे कैंसर होता है। गठिया का मूल कारण ईर्ष्या है। जो लोग दूसरों को हमेशा परेशान करने मे लगे रहते हैं उन्हे ठंड ज्यादा लगती है। स्नायुशूल पर उनका निष्कर्ष था कि इसके रोगी व्यावहारिक जीवन में आवश्यकता से अधिक स्वार्थी, खुदगर्ज एवं हिंसक प्रवृत्ति के होते हैं। अजीर्ण रोग झगड़ालू लोगों को होता है।

कोरोना काल ने बदल दी सोच :

सम्पूर्ण विश्व ने कोरोना के रूप में एक भयंकर काल देखा है। कोरोना काल के पहले और कोरोना काल के बाद लोगों की सोच बदली है। अब वैश्विक स्तर पर जीवनशैली का महत्व समझ आने लगा है। पहले जिस आयुर्वेद को सिर्फ चिकित्सा विज्ञान कहकर नकार दिया जाता था अब

विचार एक आध्यात्मिक पक्ष है जिसके अनुसार शरीर की गतिविधियां संचालित होती हैं। हमारे मनोवैज्ञानिक और चिकित्सक भी अब इस बात को स्वीकार कर रहे हैं मनुष्य की चिंतन शैली में असंतुलन से प्राणों की गति प्रभावित होती है। इस असंतुलन का परिणाम सम्पूर्ण शरीर पर दुष्प्रभाव डालता है। प्रतिकूल मनोदशा में खाया हुआ अन्न शरीर मे ठीक से पचता नहीं है जो आधि/मानसिक रोग पैदा करते हैं।

वह जीवन शैली का विज्ञान बनकर आत्मसात किया जा रहा है। एक ओर अन्य चिकित्सा विज्ञान बाह्य स्रोतों से शरीर की जरूरत पूरी करने पर आधारित हैं तो वहीं दूसरी ओर आयुर्वेद स्वास्थ्य को जीवन शैली से जोड़कर इसको जीवन का ही एक अभिन्न अंग बना देता है। प्रातः काल ब्रह्म-मुहूर्त मे उठते ही आयुर्वेद अपने प्रभाव मे आ जाता है। सुबह सवेरे योग क्रियाएँ इसका पहला भाग है। दूसरे भाग में आहार का स्थान है। शाकाहारी भोजन में नियमित रूप से प्रयुक्त होने वाले मसाले जैसे हींग, कलौंजी, अदरक, मैथी, अजवाइन, काली मिर्च आदि स्वयं मे एक आयुर्वेदिक जड़ी बूटियाँ हैं जिनके द्वारा पाचन तंत्र दुरुस्त रहता है और पाचन के लिए आवश्यक अग्नि संतुलित रहती है। संस्कार एवं शिक्षा इसका तीसरा भाग है जिसके द्वारा मानसिक उन्नति सुनिश्चित होती है और नैतिकता का मार्ग प्रशस्त होता है। इस तरह से आयुर्वेद का आध्यात्मिक चक्र पूर्ण होता है।

पाश्चात्य परंपरा के वाहक लोग जैसे जैसे इस जीवन शैली से आकर्षित हो रहे हैं, वैसे वैसे भारत वैश्विक परिदृश्य मे बेहतर स्वास्थ्य के लिए आयुर्वेद की उपयोगिता का ध्वजवाहक बन आगे आया है। बहुत से विदेशी देशों ने विज्ञान के प्रभाव, उत्पादकता, परिणाम और महत्व को समझना शुरू भी कर दिया है। यूएसए, यूके, रूस, जर्मनी हंगरी, दक्षिण अफ्रीका और विश्व के अन्य भाग से लोग भारत मे आयुर्वेद विशेषज्ञों द्वारा उपचार कराने के लिए भारत आते हैं। योग शिक्षक विदेशों मे अपने ज्ञान का लाभ वहाँ के नागरिकों को दे रहे हैं। लगभग एक दशक पहले अमेरिका के कैनेटीकट में पहले अंतरराष्ट्रीय आयुर्वेदिक सम्मेलन का आयोजन हुआ था जिसमें एलोपैथी के डॉक्टर और सर्जन भी एकत्रित हुए थे। इस सम्मेलन में महत्वपूर्ण बात यह थी कि एलोपैथी के डॉक्टर भी आयुर्वेद से प्रभावित थे और विमर्श किया कि कैसे अमरीका में लोगों के स्वास्थ्य को बेहतर बनाने के लिए आयुर्वेद का इस्तेमाल किया जाए ? आयुर्वेद और एलोपैथी को साथ मिलाकर किस तरह बड़ी बीमारियों के इलाज की कोशिश की जाये? उन्नत तकनीक वाले देशों में लोग समझने लगे हैं कि जीवन शैली का विज्ञान एक उन्नत चिकित्सा विज्ञान है।

ब्रांडेड दवाई नहीं स्वास्थ्य प्राथमिकता है :

चिकित्सा क्षेत्र मे हमें एक ऐसी चिकित्सा प्रणाली चाहिए जो बीमारों के बारे में सोचे ना कि पैसा बनाने का माध्यम हो। भारत के संदर्भ मे देखें तो नई-नई बीमारियों के द्वारा निजी अस्पताल पैसा कमाने का कोई मौका नहीं छोडते हैं। जापानी बुखार, डेंगू, स्वाइन फ्लू और अब कोरोना के द्वारा मुनाफे को केंद्र में रख कर चलने वाले चिकित्सा के कारोबारियों से यह उम्मीद नहीं की जा सकती कि वे इन समस्याओं से निपटने को प्राथमिकता देंगे। इनका ध्यान सिर्फ डर के माध्यम से पैसे की उगाही ज्यादा लगता है। ये लोग हमसे, हमारा ही पैसा लेकर, हम पर ही अपनी दवाओं का परीक्षण कर रहे हैं। कोरोना काल के दौरान दवाइयों का ट्राइल और लूटखोरी हमने देखी है। अस्पताल में हुयी मौतों ने लोगों को अंदर तक हिलाकर रख दिया था। भारतीय नागरिकों पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों के द्वारा किए जा रहे अवैध परीक्षणों पर पूर्व में भारत के उच्चतम न्यायालय ने भी सरकार को चेताया था । एक जनहित याचिका पर न्यायमूर्ति आर एम लोढ़ा और न्यायमूर्ति अनिल आर दवे की खंडपीठ का यहाँ तक कहना था कि "दवाओं के अवैध परीक्षण देश में 'बर्बादी' ला रहे हैं। नागरिकों की मौत के जिम्मेदार परीक्षणों के इस 'धंधे' को रोकने के लिए एक समुचित तंत्र स्थापित करने में सरकार क्यों विफल रही है"। न्यायालय ने इसके साथ

पाश्चात्य परंपरा के वाहक लोग जैसे जैसे इस जीवन शैली से आकर्षित हो रहे हैं वैसे वैसे भारत वैश्विक परिदृश्य मे बेहतर स्वास्थ्य के लिए आयुर्वेद की उपयोगिता का ध्वजवाहक बन आगे आया है। बहुत से विदेशी देशों ने विज्ञान के प्रभाव, उत्पादकता, परिणाम और महत्व को समझना शुरू भी कर दिया है। यूएसए, यूके, रूस, जर्मनी हंगरी, दक्षिण अफ्रीका और विश्व के अन्य भाग से लोग भारत में आयुर्वेद विशेषज्ञों द्वारा उपचार कराने के लिए भारत आते हैं।

ही निर्देश भी दिया था कि देश में भविष्य में अब सभी दवाओं के परीक्षण केंद्रीय स्वास्थ्य सचिव की देखरेख में ही होंगे। सरकार को स्थिति की गंभीरता को समझते हुए तत्काल इस समस्या से निबटना चाहिए। अनियंत्रित परीक्षण देश में बर्बादी ला रहे हैं और सरकार गहरी नींद में है। यह जानकर हमें दुख होता है कि नियमों का प्रारूप दिखा कर ये कंपनियां हमारे देश के बच्चों को बलि का बकरा बना रहीं हैं"।

हमारे लिए अब उपयुक्त समय है कि अब हम इस बात को समझें कि स्वस्थ नागरिक ही विकसित भारत का निर्माण कर सकते हैं। एक बीमार राष्ट्र कभी ऊँचाइयाँ प्राप्त नहीं कर सकता। जन स्वास्थ्य समवर्ती सूची में आता है, यानी यह मसला केंद्र की जिम्मेदारी से भी ताल्लुक रखता है और राज्यों की भी। एक कल्याणकारी राज्य भारत के लिए सोचने का समय है कि क्यों स्वास्थ्य हमारी पहली प्राथमिकता नहीं बन पा रहा है। ऊंची विकास दर के बावजूद सामाजिक विकास के मानकों पर हम पिछड़े हुये क्यों हैं ? संयुक्त राष्ट्र की मानव विकास की रिपोर्ट प्रत्येक वर्ष हमें आगाह करती है कि स्वास्थ्य पर अभी हमें बहुत ध्यान देना है। सार्वजनिक चिकित्सा व्यवस्था पर हमारा सरकारी खर्च काफी कम है और जो हो रहा है उसका दुरुपयोग ज्यादा हो रहा है । देश के चालीस फीसद से ज्यादा बच्चे कुपोषण के शिकार हैं। प्रसव के दौरान स्त्रियों और बच्चों की मृत्यु दर के मामले में भारत का रिकार्ड दुनिया में बेहद खराब है। साधारण बीमारियों से हर साल लाखों लोगों का मरना स्वास्थ्य सेवाओं में हमारी अनदेखी का ही परिणाम है। एक और जहां सरकारी अस्पतालों की दुर्दशा चिंता का विषय है वहीं निजी अस्पतालों मे बीमार व्यक्ति के पैसे से उसका ही क्लिनिकल ट्राइल चिंता का विषय है। समृद्ध वर्ग का सरकारी सेवाओं पर भरोसा कम है इसलिए चिकित्सा पर देश में सत्तर फीसद स्वास्थ्य-खर्च निजी स्रोतों से पूरा किया जाता है।

संयुक्त राष्ट्र की मानव विकास की रिपोर्ट प्रत्येक वर्ष हमें आगाह करती है कि स्वास्थ्य पर अभी हमें बहुत ध्यान देना है। सार्वजनिक चिकित्सा व्यवस्था पर हमारा सरकारी खर्च काफी कम है और जो हो रहा है उसका दुरुपयोग ज्यादा हो रहा है ।

समस्या का समाधान :

अब यदि समाधान की तरफ मंथन करें तो जिस तरह कानून समस्या का पूर्व-निदान नहीं करता है बल्कि अपराध घटित होने के बाद में उपचार प्रदान करता है, उसी तरह एलोपैथ समस्या का उपचार प्रदान करता है। कानूनों के निर्माण के द्वारा अपराधों पर अंकुश नहीं लगता है बल्कि संस्कार अपराध रोकते हैं। आयुर्वेद आधारित भारतीय पारंपरिक जीवन शैली रोगों का पूर्व-निदान भी करती है और उपचार भी। इस जीवन शैली के अभिन्न अंग हवन और श्लोक एक वैज्ञानिक स्वरूप है। वातावरण शुद्धि मे कारगर हवन द्वारा हानिकारक बैक्टीरिया और वाइरस का नाश होता है। ॐ की ध्वनि के द्वारा पैदा हुई तरंगों का प्रभाव अब विश्व मान चुका है। ॐ की ध्वनि मनोस्थिति को ताजा करती है और रक्त मे नयी ऊर्जा का संचार कर देती है। कोरोना काल के बाद वैश्विक स्वास्थ्य समस्याओं का निदान जीवन शैली पर आकर टिक गया है। भागदौड़ की जिंदगी के मध्य वर्क एट होम एक नया प्रारूप है। इसमें समय और संसाधन भी बचते हैं और पारिवारिक समन्वय भी बढ़ता है। अमेरिका में बैंकों का डूबना और मंदी की आहट इस बात का प्रमाण है कि पूंजीवादी व्यवस्था न मानसिक शांति दे पा रही है और न ही बेहतर स्वास्थ्य। ट्रम्प सरकार सिर्फ स्वास्थ्य कारणों से दूसरा कार्यकाल प्राप्त नहीं कर पायी। पूंजीवादी व्यवस्था सिर्फ धन को सफलता का मापदंड बना देती है जहां स्वास्थ्य, आध्यात्मिक उन्नति, संस्कार और जीवन शैली जैसे महत्वपूर्ण तत्व इसके आगे गौण हो जाते हैं। अब वैश्विक स्तर पर आध्यात्मिक और वैचारिक पक्ष का महत्व समझ आने लगा है। और यही समझ भारत की आजादी के सौ साल पूरा होने पर भारत और विश्व का ध्वजवाहक बनेगा।

'(विधि एवं प्रबंधन में परास्नातक लेखक वरिष्ठ स्तंभकार एवं स्वस्थ भारत ट्रस्ट के राष्ट्रीय कार्यकारिणी सदस्य हैं।)'

सुमित्रानंदन पंत की कविताएं

वे आँखे

अंधकार की गुहा सरीखी
उन आँखों से डरता है मन,
भरा दूर तक उनमें दारुण
दैन्य दुख का नीरव रोदन!
वह स्वाधीन किसान रहा,
अभिमान भरा आँखों में इसका,
छोड़ उसे मँझधार आज
संसार कगार सदृश बह खिसका!
लहराते वे खेत दृगों में
हुआ बेदखल वह अब जिनसे,
हँसती थी उसके जीवन की
हरियाली जिनके तृन-तृन से!
आँखों ही में घूमा करता
वह उसकी आँखों का तारा,
कारकुनों की लाठी से जो
गया जवानी ही में मारा!
बिका दवा दर्पन के घरनी
स्वरग चली, आँखे आती भर,
देख-रेख के बिना दुधमुँही
बिटिया दो दिन बाद गई मर!
घर में विधवा रही पतोहू,
लछमी थी, यद्यपि पति घातिन,
पकड़ मँगाया कोतवाल ने,

डूब कुँए में मरी एक दिन!
खैर, पैर की जूती, जोरू
न सही एक, दूसरी आती,
पर जवान लड़के की सुध कर
साँप लोटते, फटती छाती।
पिछले सुख की स्मृति आँखों में
क्षण भर एक चमक है लाती,
तुरत शून्य में गड़ वह चितवन
तीखी नोक सदृश बन जाती।

भारतमाता

भारतमाता
ग्रामवासिनी।
खेतों में फैला है श्यामल
धूल भरा मैला सा आँचल,
गंगा यमुना में आँसू जल,
मिट्टी की प्रतिमा
उदासिनी।
दैन्य जड़ित अपलक नत चितवन,
अधरों में चिर नीरव रोदन,
युग युग के तम से विषण्णा मन,
वह अपने घर में
प्रवासिनी।
तीस कोटि संतान नग्न तन,
अर्ध क्षुधित, शोषित, निरस्त्र जन,
मूढ़, असभ्य, अशिक्षित, निर्धन,
नत मस्तक
तरु तल निवासिनी!
स्वर्ण शस्य पर-पदतल लुंठित,
धरती सा सहिष्णु मन कुंठित,
क्रंदन कंपित अधर मौन स्मित,
राहु ग्रसित
शरदेंदु हासिनी।

चिंतित भृकुटि क्षितिज तिमिरांकित,
नमित नयन नभ वाष्पाच्छादित,
आनन श्री छाया शशि उपमित,
ज्ञान मूढ़
गीता प्रकाशिनी!
सफल आज उसका तप संयम,
पिला अहिंसा स्तन्य सुधोपम,
हरती जन मन भय, भव तम भ्रम,
जग जननी
जीवन विकासिनी!

ग्रामश्री

फैली खेतों में दूर तलक
मखमल की कोमल हरियाली,
लिपटीं जिससे रवि की किरणें
चाँदी की सी उजली जाली!
तिनकों के हरे-हरे तन पर
हिल हरित रुधिर है रहा झलक,
श्यामल भूतल पर झुका हुआ
नभ का चिर निर्मल नील फलक!
रोमांचित-सी लगी वसुधा
आई जौ गेहूँ में बाली,
अरहर सनई की सोने की
किंकिणियाँ हैं शोभाशाली!
उड़ती भीनी तैलाक्त गंध
फूली सरसों पीली-पीली,
लो, हरित धरा से झाँक रही
नीलम की कली, तीसी नीली!
रंग-रंग के फूलों में रिलमिल
हँस रही सखियाँ मटर खड़ी,
मखमली पेटियों-सी लटकीं
छीमियाँ, छिपाए बीज लड़ी!
फिरती हैं रंग-रंग की तितली

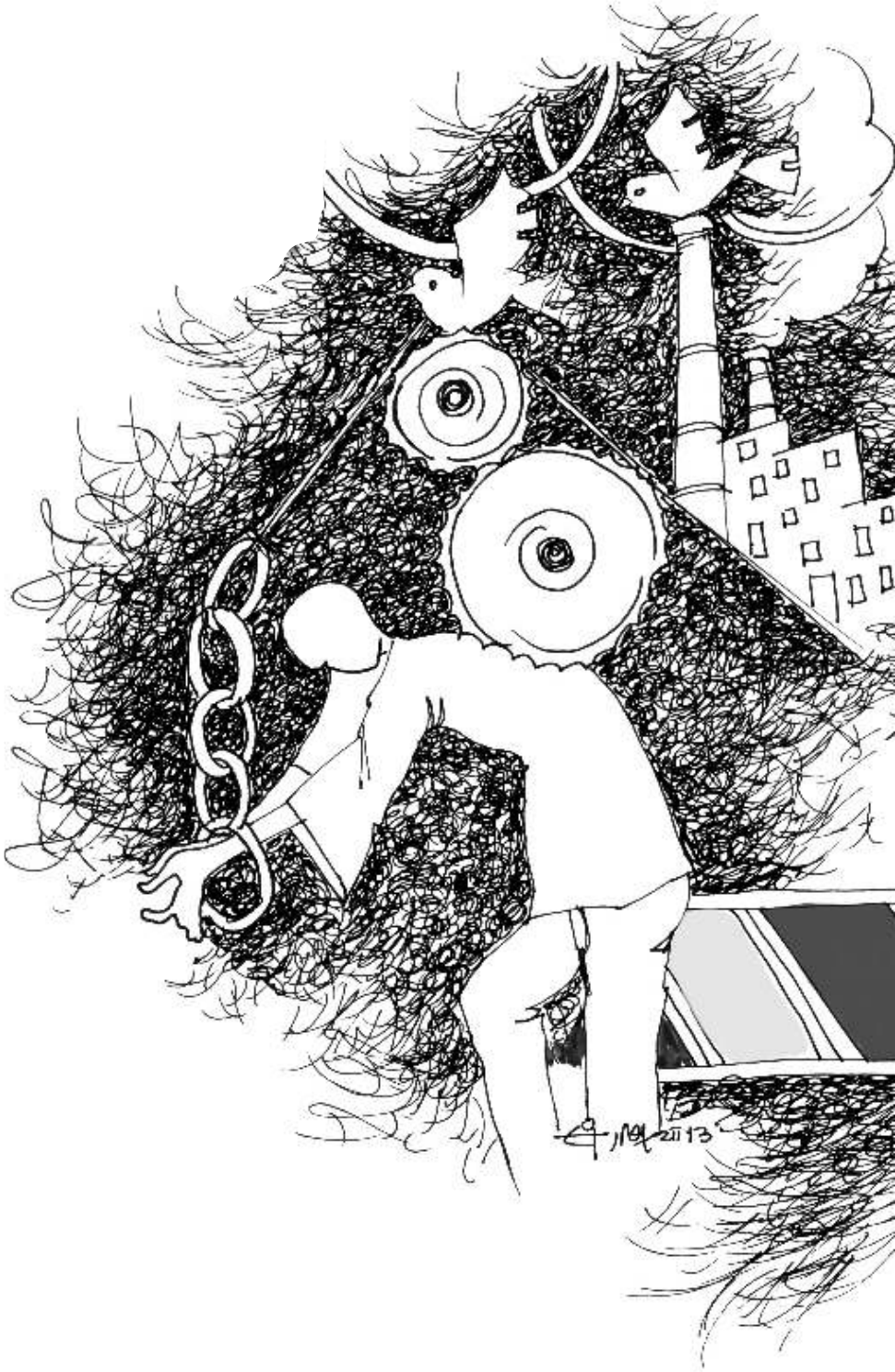

रंग-रंग के फूलों पर सुंदर,
फूले फिरते हैं फूल स्वयं
उड़-उड़ वृंतों से वृंतों पर!
अब रजत स्वर्ण मंजरियों से
लद गई आम्र तरु की डाली,
झर रहे ढाक, पीपल के दल,
हो उठी कोकिला मतवाली!
महके कटहल, मुकुलित जामुन,
जंगल में झरबेरी झूली,
फूले आड़ू, नींबू, दाड़िम,
आलू, गोभी, बैंगन, मूली!
पीले मीठे अमरूदों में
अब लाल-लाल चित्तियाँ पड़ी,
पक गए सुनहले मधुर बेर,
अँवली से तरु की डाल जड़ी!
लहलह पालक, महमह धनिया,
लौकी और सेम फली, फैली
मखमली टमाटर हुए लाल,
मिरचों की बड़ी हरी थैली!
बालू के साँपों से अंकित
गंगा की सतरंगी रेती
सुंदर लगती सरपत छाई
तट पर तरबूजों की खेती;
अँगुली की कँघी से बगुले
कलँगी सँवारते हैं कोई,
तिरते जल में सुरखाब, पुलिन पर
मगरौठी रहती सोई!
हँसमुख हरियाली हिम-आतप
सुख से अलसाए-से सोए,
भीगी अँधियाली में निशि की
तारक स्वप्नों में-से खोए
मरकत डिब्बे सा खुला ग्राम
जिस पर नीलम नभ आच्छादन
निरुपम हिमांत में स्निग्ध शांत
निज शोभा से हरता जन मन!

रोज देखती हूं

रेखा शाह आरबी

घर के पीछे सबसे उंचे पेड़ पर
नीलकंठ के जोड़े को,
हंसते गाते क्रीड़ा करते,

उनको हंसते गाते क्रीड़ा करते
देख कर लगता है
ईश्वर भी ऐसे ही मुस्कुराता होगा,

एक कहीं दूर चला जाता है
तो दूसरा उसे
पुकार लगा-लगा बुला लेता है,
कुछ देर में आ बैठते हैं
पास और बतियाने लगते हैं,
अपने दुख-सुख, खुशी-गम,
मगन रहते,
अपनी दुनिया में,

उनकी दुनिया में
पेड़, आसमान,
नदिया उसका साथी,
इसके अलावा कोई नहीं है,
लेकिन वह खुश है
एक दूसरे के साथ,

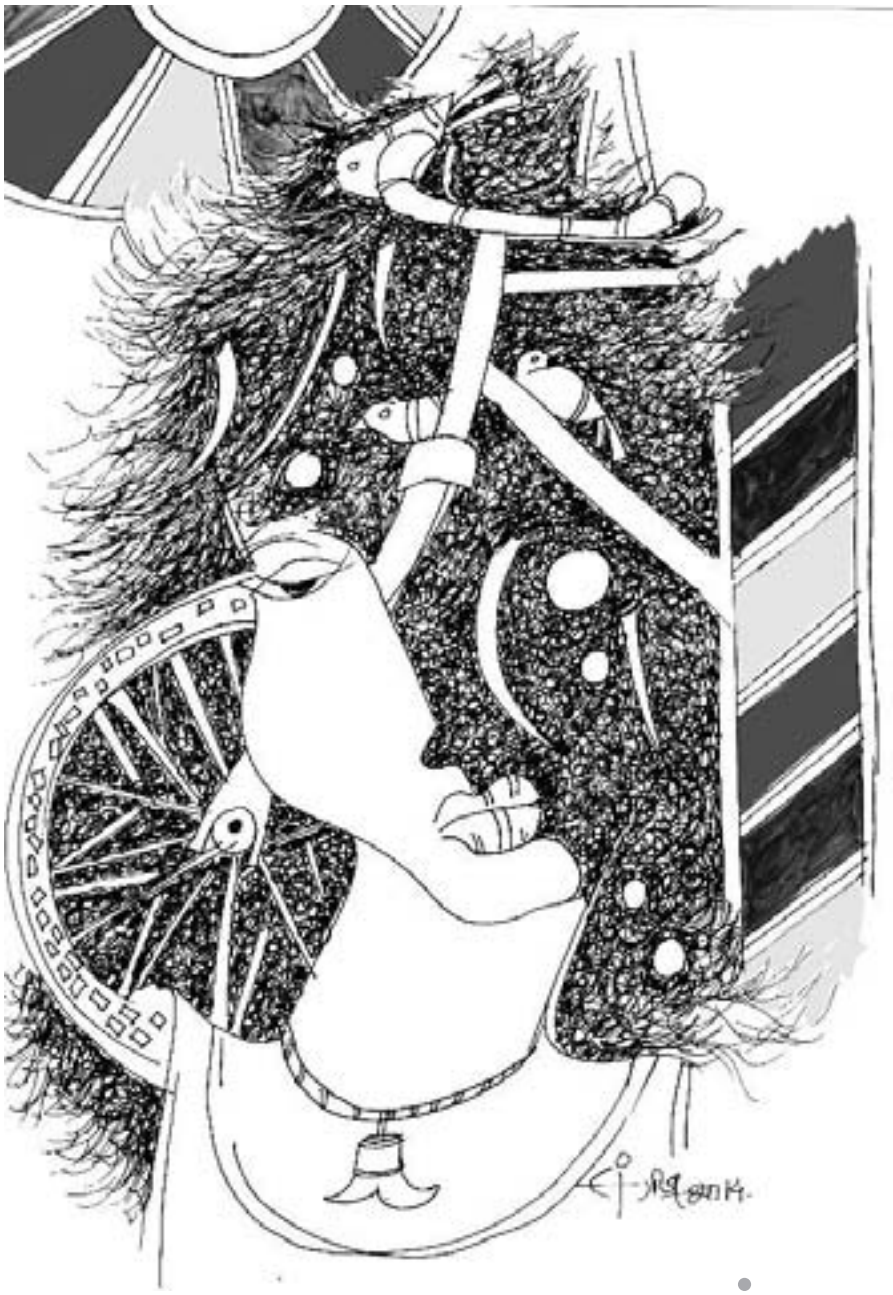

मोहल्ले में आज लगा है
लाउडस्पीकर,
अपनी पूरी तेज ध्वनि में,
अपने इष्ट का
अर्चन करने के लिए,

उसकी तेज ध्वनि
कभी-कभी मन बेचैन करती,
घबराहट भर देती सीने में,
तो कहीं दूर
एकांत में जाना पड़ता है,

लेकिन अपना दुख लेकर
यह नीलकंठ कहां जाएं,
तेज ध्वनि के चलते
उसकी पुकार,
उसके साथी तक नहीं जा रही है,

जिसके चलते
वह अकेले उदास, निराश बैठा है,
उसकी उदासी का पाप
किसके सर होगा??

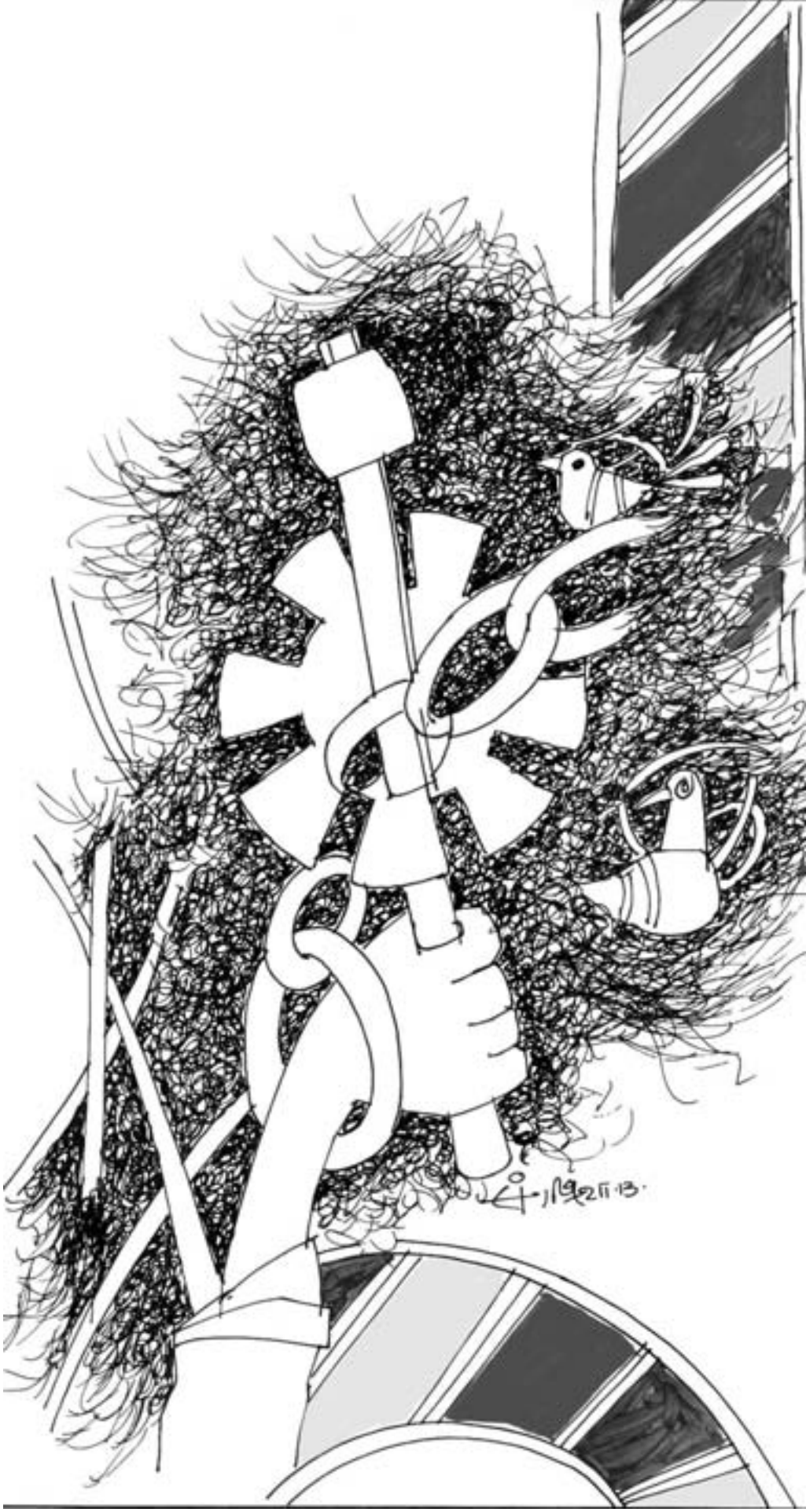

संपर्कः
बलिया (यूपी)
मो॰ 8736863698

फोटो में गांधी

(महात्मा गाँधी बिड़ला हाउस (अब गांधी स्मृति) में)

बाल कहानी

डाक बाबू का प्यार

प्रकाश मनु

रजनी से अगर कोई पूछे कि उसे धीरपुर में सबसे अच्छा क्या लगता है, तो मुझे यकीन है, वह डाक बाबू का नाम ही लेगी। डाक बाबू दयाराम।

भला क्या खास बात थी उनमें? एकदम सीधे-सादे तो थे, उस छोटे से कस्बे धीरपुर के सीधे-सरल डाक बाबू दयाराम। जैसा नाम, वैसे ही भले और दयालु भी।

लंबा ऊँचा कद, बड़ी-बड़ी मूँछें। पर बात करो, तो लगेगा एकदम विनम्रता की मूर्ति। हमेशा खद्दर की ही सफेद धोती और कुरता पहनते थे। इसलिए सबसे अलग नजर आते थे। सारा धीरपुर उन्हें जानता था। कभी किसी का कोई काम अटकता, तो डाक बाबू दयाराम जैसे भी हो, उसे पूरा करते। कभी-कभी तो रात-बेरात भी वे दूसरों के लिए दौड़ पड़ते। इसीलिए हर कोई दिल से उनकी इज्जत करता था।

धीरपुर था तो एक छोटा सा कस्बा, लेकिन उसमें लड़कियों का एक मशहूर स्कूल था, भगवतीबाई कन्या विद्यालय। उसमें दूर-दूर के गाँवों की लड़कियाँ पढ़ने आती। उसी में पढ़ती थी ऊँचा गाँव की रजनी भी। वह भगवतीबाई कन्या विद्यालय के लड़कियों के हॉस्टल में रहती थी।

रजनी के पिता देवीसिंह एक मामूली किसान ही तो थे। फिर भी उनकी इच्छा थी, बेटी पढ़-लिख जाए। लायक बने। इसलिए उन्होंने भगवतीबाई कन्या विद्यालय में उसे दाखिला दिलाया था। चाहे खुद कितनी ही तंगी में रहें, पर हर महीन मनीआर्डर से उसके पास फीस के पैसे जरूर भेज देते थे।

रजनी अच्छी लड़की थी। खूब मेहनत से पढ़ती और अच्छे नंबर लाती। घर से थोड़े ही पैसे आते थे, पर वह उसी में अपना काम चला लेती थी। फिजूल की चीजों में एक भी पैसा खर्च न करती। और लड़कियाँ हैरान थीं, एक मामूली किसान की लड़की इतनी तरक्की कैसे कर रही है!

रजनी को बस तभी परेशानी तभी होती, जब घर से मनीआर्डर आने में देर हो जाती। तब स्कूल में फीस जमा करने के लिए क्लास टीचर की डाँट पड़ती। या फिर हॉस्टल की मैस का बिल चुकाने के लिए तकाजे आने लगते। ऐसे में रजनी दौड़कर डाक बाबू दयाराम जी के पास ही जाती। कहती, "चाचा जी...चाचा जी, मेरा मनीआर्डर नहीं आया?"

डाक बाबू दयाराम रजनी का परेशान चेहरा देखकर उससे भी ज्यादा परेशान हो जाते। फिर से पूरी लिस्ट मँगाकर देखते। फिर सिर हिलाकर कहते, "नहीं बेटी, अभी तो नहीं आया।"

रजनी उदास होकर लौटने लगती, तो एक क्षण के लिए वे गुमसुम से उसे देखते रहते। फिर प्यार से आवाज लगाते, "रजनी बेटी, सुनो तो!"

रजनी आती तो डाक बाबू चिंतित स्वर में पूछते, "क्यों बेटी, बहुत जरूरत है तो मुझसे कहो। मैं कर देता हूँ इंतजाम। तुम्हारा मनीआर्डर आए तो लौटा देना।"

"नहीं चाचा जी, ऐसी तो कोई बात नहीं। मनीआर्डर आता ही होगा।" कहकर रजनी फिर से लौटने लगती।

तब डाक बाबू उसे एक खाली पोस्टकार्ड निकालकर पकड़ा देते। कहते, "जल्दी से इस पर पता लिखकर, दो लाइन की चिट्ठी लिख दो पिता जी के नाम। इसी डाक से निकल जाएगी। हो सकता है, कल-परसों तक मनीआर्डर भी आ जाए।"

डाक बाबू का प्यार देखकर रजनी की आँखें भीग जातीं। जल्दी से पोस्ट कार्ड लिखकर डाक बाबू को पकड़ाती और हॉस्टल आ जाती। और फिर सचमुच तीसरे-चौथे रोज उसका मनीआर्डर आ जाता। रजनी डाक बाबू को धन्यवाद दिए बगैर न रह पाती। वे उसे अपने सचमुच के चाचा ही लगते थे।

ऐसे ही कई साल बीते। रजनी हाईस्कूल में आ गई। बोर्ड की परीक्षा थी। क्लास टीचर ने कहा था, "सब बच्चों को बोर्ड की परीक्षा के लिए तीन सौ रुपए अलग से जमा करने होंगे।" रजनी ने तुरंत घर पर चिट्ठी डाल दी थी कि इस बार मनीआर्डर में उसे तीन सौ रुपए ज्यादा भेजे जाएँ।

लेकिन आज सात तारीख हो गई थी, मनीआर्डर आया ही न था।

रजनी इस पूरे हफ्ते स्कूल की पढ़ाई खत्म होते ही डाकखाने जाकर डाक बाबू से पूछती रही थी, "चाचा जी, मेरा मनीआर्डर आया?" और हर बार उसे एक ही जवाब मिला, "नहीं बेटी, आया होता तो मैं खुद आकर तुझे दे आता।"

रजनी की परेशानी बढ़ती जा रही थी। हाईस्कूल की परीक्षा पास थी। स्कूल की फीस तो दी ही जानी थी, बोर्ड की परीक्षा की फीस भी भरी जानी थी। नहीं तो भला वह इम्तिहान में कैसे बैठ सकती थी?

जब भी वह डाक बाबू से जवाब में इनकार सुनती, उसका चेहरा रोंआसा हो जाता। और आज तो क्लास टीचर मिसेज कांता वधवा ने भी उसे बुरी तरह डाँटा था। कहा था, "तय कर लो, तुम्हें परीक्षा में बैठना है या नहीं? अगर स्कूल से सब बच्चों के फार्म चले गए और तुम्हारा छूट गया, तो इम्तिहान में नहीं बैठ पाओगी। तुम्हारा यह साल बेकार हो जाएगा।"

सुनकर रजनी की आँखों से आँसू टपक पड़े। उसने बड़ी मुश्किल से उन्हें छिपाया। सोचा, 'आज मैं डाक बाबू से कहूँगी कि वे मेरे लिए फीस का इंतजाम कर दें। बाद में मनीआर्डर आते ही उनके पैसे चुका दूँगी।'

रजनी स्कूल की छुट्टी होते ही दौड़ी-दौड़ी डाकघर गई। और जैसे ही डाकबाबू ने कहा कि "मनीआर्डर तो आज भी नहीं आया, बेटी।" उसके होंठ काँपकर रह गए।

उसने कहना चाहा, "चाचा जी, आप मेरे लिए कुछ पैसों का इंतजाम कर दीजिए।" पर उसके मुँह से कोई शब्द निकला ही नहीं। वह होंठ भींचे हुए वापस आई और हॉस्टल में अपने कमरे में आकर खूब रोई, खूब रोई।

रात में उससे खाना भी नहीं खाया गया। न जाने कब वह सो गई। सोच रही थी, श्अगर कल भी पैसे नहीं आए तो मैं स्कूल नहीं जाऊँगी। हॉस्टल छोड़कर घर चली जाऊँगी। फिर भले ही इम्तिहान में न बैठ पाऊँ।'

अगले दिन रजनी अभी उठी ही थी कि आया ने उसे बताया, अतिथि कक्ष में कोई सज्जन उसका इंतजार कर रहे हैं। रजनी हैरान! इतनी सुबह-सुबह कौन उनसे मिलने आ गया?

वहाँ जाकर देखा, तो उसे अपनी आँखों पर विश्वास ही न हुआ। सामने डाक बाबू दयाराम बैठे मंद-मंद मुसकरा रहे थे।

"अरे चाचा जी, आप?" रजनी ने चकित होकर कहा, "इतनी सुबह-सुबह!"

"हाँ बेटी, मनीआर्डर तुम्हारा कल ही आ गया था। लेकिन डाकिया बीमार था। कल आ नहीं पाया, तो मैंने

सोचा मैं खुद जाकर दे आऊँ। शायद तुम्हें जरूरत हो।" कहकर दयाराम जी ने सौ-सौ के पाँच नोट उसके आगे रख दिए। फिर बोले, "लगता है, तुम्हारी इस बार की फीस लेट हो गई है। तुम कहो तो मैं प्रिंसिपल साहब के पास जाकर बात करूँ। मेरे तो वे परिचित हैं।"

"नहीं चाचा जी, इसकी जरूरत नहीं है।" रजनी ने कहा, "आज ही फीस जमा करने की आखिरी तारीख है। मैं स्कूल जाते ही जमा कर दूँगी। ईश्वर का लाख-लाख शुक्र है। अब मैं इम्तिहान में बैठ पाऊँगी।"

डाक बाबू उठकर चलने लगे तो रजनी बोली, "चाचा जी, इस बार आपने मनीआर्डर फार्म पर दस्तखत नहीं करवाए। मैं देखना चाहती थी, पिता जी ने मेरे नाम कोई संदेश तो नहीं लिखवाया?"

"ओ हाँ...!" डाक बाबू बोले, "असल में डाकिए को आना था मनीआर्डर देने तो मैंने खुद दस्तखत कर दिए। उससे पैसे ले लिए, ताकि सुबह तेरे पास पहुँचा दूँ। और हाँ, याद आया, तुम्हारे पिता जी का संदेश भी था उसमें कि हमेशा की तरह खूब लगन से पढ़ना और अव्वल आना।"

सुनकर रजनी की आँखों में चमक आ गई। उसने डाक बाबू को बहुत-बहुत धन्यवाद दिया।

अगले ही दिन रजनी ने घर पर चिट्ठी लिखी। उसने पिता जी को लिखा, "आपके भेजे हुए पाँच सौ रुपए मिल गए। डाक बाबू खुद हॉस्टल में चलकर आए और मुझे दे गए। बहुत भले हैं वे। उस दिन सुबह-सुबह पैसे न मिलते तो मैं इम्तिहान में नहीं बैठ सकती थी।"

रजनी की चिट्ठी का कोई जवाब तो नहीं आया, पर उसके एक सप्ताह बाद गाँव से बाबा फकीरचंद आए। उन्हें उसके पिता ने ही भेजा था। बोले, "तेरे पिता का ट्रैक्टर से एक्सीडेंट हो गया था। काफी चोट लगी, सब परेशान थे तो पैसे कौन भेजता? ले, उन्होंने सात सौ रुपए भिजवाए हैं।"

"पर...?" रजनी हैरान होकर बोली, "पाँच सौ रुपए तो उन्होंने पिछले हफ्ते ही भिजवाए थे। फिर मैं इतने रुपए लेकर क्या करूँगी?"

"कौन से पाँच सौ रुपए?" फकीरचंद हैरान होकर बोले, "तेरे पिता तो पिछले हफ्ते बेहोश थे। उन्हें कुछ होश ही नहीं था। फिर रुपए कौन भिजवाता?"

कुछ देर बाद जैसे उन्हें याद आया हो, बोले, "हाँ, तूने एक चिट्ठी तो लिखी थी घर पर कि पाँच सौ रुपए मिल गए हैं। पर किसी की कुछ समझ में नहीं आया था कि जब रुपए भेजे ही नहीं गए, तो तुझे मिले कैसे? कौन ऐसा फरिश्ता है जो..."

रजनी क्षण भर में सब समझ गई। बोली, "बाबा चलिए, मैं आपको उस फरिश्ते से मिलवाती हूँ।"

रजनी बाबा फकीरचंद के साथ दौड़ी-दौड़ी डाकखाने पहुँची। झट डाक बाबू के पास जाकर बोली, "आपका उपकार कभी भूलूँगी नहीं चाचा जी! ये लीजिए, अपने पाँच सौ रुपए रख लीजिए।"

दयाराम मंद-मंद मुसकराते हुए बोले, "क्या मैं अपनी बेटी की इतनी मदद भी नहीं कर सकता?"

इतने में बाबा फकीरचंद बोल पड़े, "मदद तो आपने बहुत बड़ी की है, डाक बाबू। यह लड़की तो क्या, हम सभी इसे जीवन भर याद रखेंगे। और रजनी तो मेरी बाँह पकड़कर यहाँ तक लाई है कि चलिए बाबा, आपको एक फरिश्ते से मिलवाना है! इसके पिता गंभीर रूप से घायल हैं। पैसे भला क्या भेजते? पर आपने पिता बनकर ही उबार लिया।"

रजनी और बाबा फकीरचंद डाक बाबू को धन्यवाद देकर लौटे, तो उनकी आँखें भीगी हुई थीं।

डाक बाबू की आँखें भी छलछला आई थीं, मानो वे मन ही मन रजनी को आशीर्वाद दे रहे हों।

इस घटना को बरसों बीत गए। रजनी छोटे से कस्बे धीरपुर के जिस स्कूल में पढ़ी थी, आज उसी में अध्यापिका है, पर वह डाक बाबू के स्नेह को आज तक नहीं भूल पाई। हालाँकि जब-जब वह डाक बाबू से इसका जिक्र करती है, तो वे मंद-मंद मुसकराते हुए कहते हैं, "आदमी आदमी के काम आए, तो भला इसमें कौन सी बड़ी बात है!"

संपर्क:
545 सेक्टर-29, फरीदाबाद (हरियाणा),
पिन-121008, मो. 9810602327

कुम्हार ने इसे बनाया

बद्री प्रसाद वर्मा 'अनजान'

कुम्हार ने इसे बनाया
देखो कितने प्यार से।
बचत करो पैसे बचाओ
समझाता है प्यार से।

पापा ने बाजार से
इसे खरीदकर लाया।
जेब खर्च बचाकर रखो
पापा ने हमको समझाया।

नाम है इसका गुल्लक
सब बच्चे घर में रखते हैं।
जो भी रुपया पैसा पाते
बचाकर इसमे रखते हैं।

गुल्लक का बचत का पैसा
बुरे वक्त में काम आता है।
इस गुल्लक के पैसे से
नेक काम हो जाता है ।

सब बच्चों को घर में अपने
एक गुल्लक रखना चाहिए।
डालकर इसमे रुपया पैसा
बचत की आदत डालना चाहिए।

संपर्क:
स्वर्गीय मीनू रेडियो श्रोता क्लब
गल्ला मंडी गोला बाजार
गोरखपुर उ. प्र. 273408

कहानी

मोटेराम शास्त्री

प्रेमचंद

पण्डित मोटेराम जी शास्त्री को कौन नहीं जानता! आप अधिकारियों का रूख देखकर काम करते है। स्वदेशी आन्दोलने के दिनों मे अपने उस आन्दोलन का खूब विरोध किया था। स्वराज्य आन्दोलन के दिनों में भी अपने अधिकारियों से राजभक्ति की सनद हासिल की थी। मगर जब इतनी उछल-कूद पर उनकी तकदीर की मीठी नींद न टूटी, और अध्यापन कार्य से पिण्ड न छूटा, तो अन्त मे अपनी एक नई तदबीर सोची। घर जाकर धर्मपत्नी जी से बोले-इन बूढ़े तोतों को रटाते-रटातें मेरी खोपड़ी पच्ची हुई जाती है। इतने दिनों विद्या-दान देने का क्याफल मिला जो और आगे कुछ मिलने की आशा करूं। धर्मपत्नी ने चिन्तित होकर कहा-भोजनों का भी तो कोई सहारा चाहिए।

मोटेराम-तुम्हें जब देखो, पेट ही की फ्रिक पड़ी रहती है। कोई ऐसा विरला ही दिन जाता होगा कि निमन्त्रण न मिलते हो, और चाहे कोई निन्दा करें, पर मै परोसा लिये बिना नहीं आता हूं। आज ही सब यजमान मरे जाते है? मगर जन्म-भर पेट ही जिलया तो क्या किया। संसार का कुछ सुख भी तो भोगन चाहिए। मैने वैद्य बनने का निश्चय किया है।

स्त्री ने आश्चर्य से कहा-वैद्य बनोगे, कुछ वैद्य की पढ़ी भी है?

मोटे-वैद्यक पढ़ने से कुछ नही होता, संसार मे विद्या का इतना महत्व नहीं जितना बुद्धि का। दो-चार सीधे-सादे लटके है, बस और कुछ नहीं। आज ही अपने नाम के आगे भिषगाचार्य बढ़ा लूंगा, कौन पूछने आता है, तुम भिषगाचार्य हो या नहीं। किसी को क्या गरज पड़ी है जो मेरी परीक्षा लेता फिरे। एक मोटा-सा साइनबोर्ड बनवा लूंगा। उस पर शब्द लिखें होंगे-यहा स्त्री पुरूषों के गुप्त रोगों की चिकित्सा विशेष रूप से की जाती है। दो-चार पैसे का हउ़-बहेड़ा-आवंला कुट छानकर रख लूंगा। बस, इस काम के लिए इतना सामान पर्याप्त है। हां, समाचारपत्रों मे विज्ञापन दूंगा और नोटिस बंटवाऊंगा। उसमें लंका, मद्रास, रंगून, कराची आदि दूरस्थ स्थानों के सज्जनों की चिट्ठियां दर्ज की जाएंगी। ये मेरे चिकित्सा-कौशल के साक्षी होगें जनता को क्या पड़ी है कि वह इस बात का पता लगाती फिरे कि उन स्थानों मे इन नामों के मनुष्य रहते भी है, या नहीं फिर देखों वैद्य की कैसी चलती है।

मोटे-वैद्यक पढने से कुछ नहीं होता, संसार मे विद्या का इतना महत्व नही जितना बुद्धि का। दो-चार सीधे-सादे लटके है, बस और कुछ नहीं। आज ही अपने नाम के आगे भिषगाचार्य बढ़ा लूंगा, कौन पूछने आता है, तुम भिषगाचार्य हो या नही। किसी को क्या गरज पड़ी है जो मेरी परिक्षा लेता फिरे। एक मोटा-सा साइनबोर्ड बनवा लूंगा।

स्त्री–लेकिन बिना जाने–बूझ दवा दोगे, तो फायदा क्या करेगी?

मोटे–फायदा न करेगी, मेरी बला से। वैद्य का काम दवा देना है, वह मृत्यु को परस्त करने का ठेका नहीं लेता, और फिर जितने आदमी बीमार पड़ते है, सभी तो नहीं मर जाते। मेरा यह कहना है कि जिन्हें कोई औषधि नहीं दी जाती, वे विकार शान्त हो जाने पर ही अच्छे हो जाते है। वैद्यों को बिना मांगे यश मिलता है। पाँच रोगियों में एक भी अच्छा हो गया, तो उसका यश मुझे अवश्य ही मिलेगा। शेष चार जो मर गये, वे मेरी निन्दा करने थोड़े ही आवेगें। मैंने बहुत विचार करके देख लिया, इससे अच्छा कोई काम नहीं है। लेख लिखना मुझे आता ही है, कवित्त बना ही लेता हूं, पत्रों मे आयुर्वेद–महत्व पर दो–चार लेख लिख दूंगा, उनमें जहां–तहां दो–चार कवित्त भी जोड़ दूंगा और लिखूगां भी जरा चटपटी भाषा में । फिर देखों कितने उल्लू फसते है यह न समझो कि मैं इतने दिनों केवल बूढ़े तोते ही रटाता रहा हूं। मै नगर के सफल वैद्यो की चालों का अवलोकन करता रहा हू और इतने दिनों के बाद मुझे उनकी सफलता के मूल–मंत्र का ज्ञान हुआ है। ईश्वर ने चाहा तो एक दिन तुम सिर से पांव तक सोने से लदी होगी।

स्त्री ने अपने मनोल्लास को दबाते हुए कहा–मैं इस उम्र मे भला क्या गहने पहनूंगी, न अब वह अभिलाषा ही है, पर यह तो बताओं कि तुम्हें दवाएं बनानी भी तो नही आती, कैसे बनाओगे, रस कैसे बनेगें, दवाओ को पहचानते भी तो नहीं हो।

मोटे–प्रिये! तुम वास्तव मे बड़ी मूर्ख हो। अरे वैद्यो के लिए इन बातों मे से एक भी आवश्यकता नहीं, वैद्य की चुटकी की राख ही रस है, भस्म है, रसायन है, बस आवश्यकता है कुछ ठाट–बाट की। एक बड़ा–सा कमरा चाहिए उसमें एक दरी हो, ताखों पर दस–पांच शीशीयां बोतल हो। इसके सिवा और कोई चीज दरकार नहीं, और सब कुछ बुद्धि आप ही आप कर लेती है। मेरे साहित्य–मिश्रित लेखों का बड़ा प्रभाव पड़ेगा, तुम देख लेना। अलंकारो का मुझे कितना ज्ञान है, यह तो तुम जानती ही हो। आज इस भूमण्डल पर मुझे ऐसा कोई नहीं दिखता जो अलंकारो के विषय में मुझसे पेश पा सके। आखिर इतने दिनों घास तो नही खोदी है! दस–पाँच आदमी तो कवि–चर्चा के नाते ही मेरे यहां आया जाया करेगें। बस, वही मेरे दल्लाह होगें। उन्ही की मार्फत मेरे पास रोगी आवेगें। मैं आयुर्वेद–ज्ञान के बल पर नही नायिका–ज्ञान के बल पर धड़ल्ले से वैद्यक करूंगा, तुम देखती तो जाओ।

स्त्री ने अविश्वास के भाव से कहा–मुझे तो डर लगता है कि कही यह विद्यार्थी भी तुम्हारे हाथ से न जाए। न इधर के रहो ने उधर के। तुम्हारे भाग्य मे तो लड़के पढ़ाना लिखा है, और चारों ओर से ठोकर खाकर फिर तुम्हें वी तोते रटाने पडेगें।

मोटे–तुम्हें मेरी योग्यता पर विश्वास क्यों नहीं आता?

स्त्री–इसलिए कि तुम वहां भी धूर्तता करोगे। मै तुम्हारी धूर्तता से चिढ़ती हूं। तुम जो कुछ नहीं हो और नही हो सकते, बक क्या बनना चाहते हो? तुम लीडर न बन सके, न बन सके, सिर पटककर रह गये। तुम्हारी धूर्तता ही फलीभूत होती है और इसी से मुझे चिढ़ है। मै चाहती हूं कि तुम भले आदमी बनकर रहो। निष्कपट जीवन व्यतीत करो। मगर तुम मेरी बात कब सुनते हो?

मोटे–आखिर मेरा नायिका–ज्ञान कब काम आवेगा?

स्त्री–किसी रईस की मुसाहिबी क्यो नहीं कर लेते? जहां दो–चार सुन्दर कवित्त सुना दोगे। वह खुश हो जाएगा और कुछ न कुछ दे ही मारेगा। वैद्यक का ढोंग क्यों रचते हों!

मोटे–मुझे ऐसे–ऐसे गुर मालूम है जो वैद्यो के बाप–दादों को भी न मालूम होगे। और सभी वैद्य एक–एक, दो–दो रूपये पर मारे–मारे फिरते है, मै अपनी फीस पांच रूपये रक्खूगा, उस पर सवारी का किराया अलग। लोग यही समझेगें कि यह कोई बडे वैद्य है नही तो इतनी फीस क्यों होती?

स्त्री को अबकी कुछ विश्वास आया बोली–इतनी देर मे तुमने एक बात मतलब की कही है। मगर यह समझ लो, यहां तुम्हारा रंग न जमेगा, किसी दूसरे शहर को चलना पड़ेगा।

मोटे–(हंसकर) क्या मैं इतना भी नही जानता। लखनऊ में अडडा जमेगा अपना। साल–भर में वह धाक

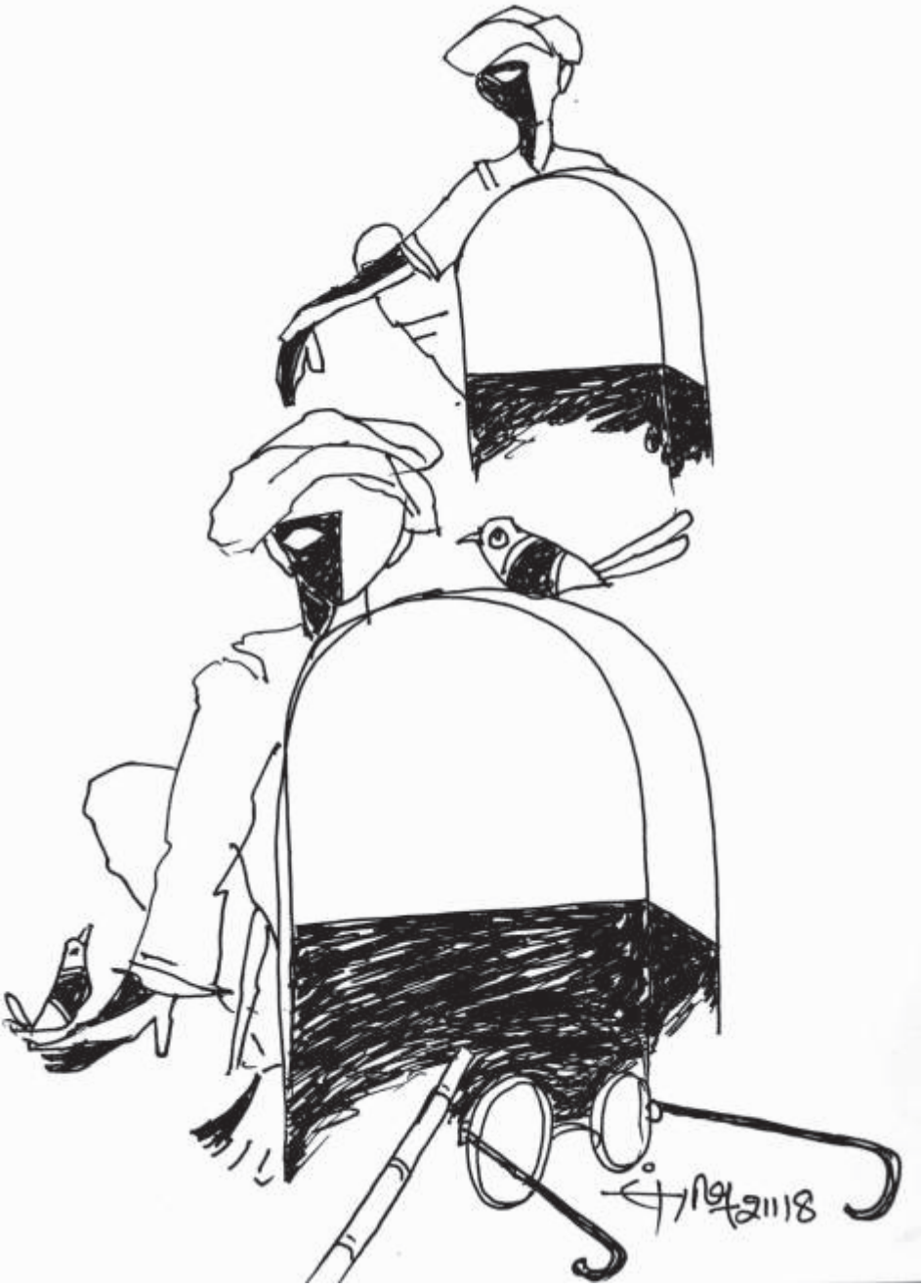

बांध दू कि सारे वैद्य गर्द हो जाएं। मुझे और भी कितने ही मन्त्र आते है। मै रोगी को दो–तीन बार देखे बिना उसकी चिकित्सा ही न करूंगा। कहूंगा, मै जब तक रोगी की प्रकृति को भली भांति पहचान न लूं, उसकी दवा नही कर सकता। बोलो, कैसी रहेगी?

स्त्री की बांछे खिल गई, बोली–अब मैं तुम्हे मान गई, अवश्य चलेगी तुम्हारी वैद्यकी, अब मुझे कोई संदेह नहीं रहा। मगर गरीबों के साथ यह मंत्र न चलाना नही तो धोखा खाओगे।

2

साल भर गुजर गया।

भिषगाचार्य पण्डित मोटेराम जी शास्त्री की लखनऊ मे घूम मच गई। अलंकारों का ज्ञान तो उन्हे था ही, कुछ गा–बजा भी लेते थे। उस पर गुप्त रोगो के विशेषज्ञ, रसिको के भाग्य जागें। पण्डित जी उन्हें कवित सुनाते, हंसाते, और बलकारक औषधियां खिलाते, और वह रईसों मे, जिन्हें पुष्टिकारक औषधियों की विशेष चाह रहती है, उनकी तारीफों के पुल बांधते। साल ही भर मे वैद्यजी का वह रंग जमा, कि बायद व शायदं गुप्त रोगों के चिकित्सक लखनऊ मे एकमात्र वही थे। गुप्त रूप से चिकित्सा भी करते। विलासिनी विधवारानियों और शौकीन अदूरदर्शी रईसों मे आपकी खूब पूजा होने लगी। किसी को अपने सामने समझते ही न थे।

मगर स्त्री उन्हे बराबर समझाया करती कि रानियों के झमेलें मे न फसों, नही क दिन पछताओगे।

मगर भावी तो होकर ही रहती है, कोई लाख समझाये–बुझाये। पंडितजी के उपासको मे बिड़हल की रानी भी थी। राजा साहब का स्वर्गवास हो चुका था, रानी साहिबा न जाने किस जीर्ण रोग से ग्रस्त थी। पण्डितजी उनके यहां दिन मे पांच–पाचं बार जाते। रानी साहिबा उन्हें एक क्षण के लिए भी देर हो जाती तो बेचौन हो जाती, एक मोटर नित्य उनके द्वार पर खड़ी रहती थी। अब पण्डित जी ने खूब केचुल बदली थी। तंजेब की अचकन पहनते, बनारसी साफा बाधते और पम्प जूता डाटते थे। मित्रगण भी उनके साथ मोटर पर बैठकर दनदनाया करते थे। कई मित्रों को रानी सहिबा के दरबार मे नौकर रखा दिया। रानी साहिबा भला अपने मसीहा की बात कैसी टालती।

मगर चर्खे जफाकार और ही षड़यन्त्र रच रहा था।

एक दिन पण्डितजी रानी साहिबा की गोरी-गोरी कलाई पर एक हाथ रखे नब्ज देख रहे थे, और दूसरे हाथ से उनके हृदय की गति की परीक्षा कर रहे थे कि इतने में कई आदमी सोटै लिए हुए कमरे में घुस आये और पण्डितजी पर टूट पड़े। रानी भागकर दूसरे कमरे की शरण ली और किवाड़ बन्द कर लिए। पण्डितजी पर बेभाव पड़ने लगे। यों तो पण्डितजी भी दमखम के आदमी थे, एक गुप्ती सदैव साथ रखते थे। पर जब धोखे मे कई आदमियों ने धर दबाया तो क्या करते? कभी इसका पैकर पकड़ते कभी उसका। हाय-हाय! का शब्द मुंह से निकल रहा था पर उन बेरहमों को उन पर जरा भी दया न आती थी, एक आदम ने एक लात जमाकर कहा-इस दुष्ट की नाक काट लो।

दूसरा बोला-'इसके मुंह में कलिख और चूना लगाकर छोड़ दो।

तीसरा-क्यों वैद्यजी महाराज, बोलो क्या मंजूर है? नाक कटवाओगे या मुंह में कालिख लगवाओगें?

पण्डित-भूलकर भी नही सरकार। हाय मर गया!

दूसरा-आज ही लखनऊ से रफरैट हो जाओं नही तो बुरा होगा।

पणिडत-सरकार मैं आज ही चला जाऊगां। जनेऊ की शपथ खाकर कहता हूं। आप यहां मेरी सूरत न देखेगें।

तीसरा-अच्छा भाई, सब कोई इसे पाँच-पाँच लाते लगाकर छोड़ दो।

पण्डित-अरे सरकार, मर जाऊगां, दया करो

चौथा-तुम जैसे पाखंडियों का मर जाना ही अच्छा है। हां तो शुरू हो। पंचलत्ती पड़ने लगी, धमाधम की आवाजें आने लगी। मालूम होता था नगाड़े पर चोट पड़ रही है। हर धमाके के बाद एक बार हाय की आवाज निकल आती थी, मानों उसकी प्रतिध्वनी हो।

पंचलत्ती पूजा समाप्त हो जाने पर लोगों ने मोटेराम जी को घसीटकर बाहर निकाला और मोटर पर बैठाकर घर भेज दिया, चलते-चलते चेतावनी दे दी, कि प्रातःकाल से पहले भाग खड़े होना, नहीं तो और ही इलाज किया जाएगा।

3

मोटेराम जी लंगड़ाते, कराहते, लकड़ी टेकते घर मे गए और धम से गिर पड़े चारपाई पर गिर पडे। स्त्री ने घबराकर पूछा-कैसा जी है? अरे तुम्हारा क्या हाल है? हाय-हाय यह तुम्हारा चेहरा कैसा हो गया!

मोटे-हाय भगवान, मर गया।

स्त्री-कहां दर्द है? इसी मारे कहती थी, बहुत रबड़ी न खाओं। लवणभास्कर ले आऊं?

मोटे-हाय, दुष्टों ने मार डाला। उसी चाण्डालिनी के कारण मेरी दुर्गति हुई। मारते-मारते सबों ने भुरकुस निकाल दिया।

स्त्री-तो यह कहो कि पिटकर आये हो। हां, पिटे हो। अच्छा हुआ। हो तुम लातो ही के देवता। कहती थी कि रानी के यहां मत आया-जाया करो। मगर तुम कब सुनते थे।

मोटे-हाय, हाय! रांड, तुझे भी इसी दम कोसने की सूझी। मेरा तो बुरा हाल है और तू कोस रही है। किसी से कह दे, ठेला-वेला लावे, रातो-रात लखनऊ से भाग जाना है। नही तो सबेरे प्राण न बचेगें।

स्त्री-नहीं, अभी तुम्हारा पेट नही भरा। अभी कुछ दिन और यहां की हवा खाओ! कैसे मजे से लड़के पढात थे, हां नही तो वैद्य बनने की सूझी। बहुत अच्छा हुआ, अब उम्र भर न भूलोगे। रानी कहां थी कि तुम पिटते रहे और उसने तुम्मारी रक्षा न की।

पण्डित-हाय, हाय वह चुडैल तो भाग गई। उसी के कारण । क्या जानता था कि यह हाल होगा, नहीं ता उसकी चिकित्सा ही क्यों करता?

स्त्री-हो तुम तकदीर के खोटे। कैसी वैद्यकी चल गई थी। मगर तुम्हारी करतूतों ने सत्यनाश मार दिया। आखिर फिर वही पढौनी करना पड़ी। हो तकदीर के खोटे।

प्रातःकाल मोटेराम जी के द्वार पर ठेला खड़ा था और उस पर असबाब लद रहा था। मित्रो मे एक भी नजर न आता था। पण्डित जी पड़े कराह रहे थे ओर स्त्री सामान लदवा रही थी।

शरारती बंदर

एक समय की बात है, एक जंगल में एक शरारती बंदर रहा करता था। वह बन्दर सभी को पेड़ों से फल फैंक कर मारा करता था। गर्मी का मौसम था पेड़ों पर ढेर सारे आम लगे हुए थे। बंदर सभी पेड़ों पर घूम-घूमकर आमों का रस चूसता और खूब मजे करता। नीचे आने-जाने वाले जानवरों पर वह ऊपर से बैठे-बैठे आम फेंक कर मारता और खूब हंसता। एक समय हाथी उधर से गुजर रहा था।

बंदर जो पेड़ पर बैठकर आम खा रहा था, वह अपने शरारती दिमाग से लाचार था। बन्दर ने हाथी पर आम तोड़कर मारा। एक आम हाथी के कान पर लगा और एक आम उसके आंख पर लगा। इससे हाथी को गुस्सा आया। उसने अपना सूंड ऊपर उठाकर बंदर को गुस्से में लपेट लिया और कहा कि मैं आज तुझे मार डालूंगा तू सब को परेशान करता है। इस पर बंदर ने अपने कान पकड़ लिए और माफी मांगी। अब से मैं किसी को परेशान नहीं करूंगा और किसी को शिकायत का मौका नहीं दूंगा। बंदर के बार बार माफी मांगने और रोने पर हाथी को दया आ गई उसने बंदर को छोड़ दिया। कुछ समय बाद दोनों घनिष्ट मित्र हो गए। बंदर अब अपने मित्र को फल तोड़-तोड़ कर खिलाता और दोनों मित्र पूरे जंगल में घूमते थे।

शिक्षा: किसी को परेशान नहीं करना चाहिए उसका परिणाम बुरा ही होता है।

सुंदरवन की कहानी

सुंदरवन नामक एक खूबसूरत जंगल था। वहां खूब ढेर सारे जानवर, पशु-पक्षी रहा करते थे। धीरे-धीरे सुंदरवन की सुंदरता कम होती जा रही थी। पशु-पक्षी भी वहां से कहीं दूसरे जंगल जा रहे थे। कारण यह था कि वहां पर कुछ वर्षों से बरसात नहीं हो रही थी। जिसके कारण जंगल में पानी की कमी निरंतर होती जा रही थी। पेड़-पौधों की हरियाली खत्म हो रही थी और पशु पक्षियों का मन भी वहां नहीं लग रहा था। सभी वन को छोड़कर दूसरे वन में जा रहे थे कि गिद्धों ने ऊपर उड़ कर देखा तो उन्हें काले घने बादल जंगल की ओर आते नजर आए।

उन्होंने सभी को बताया कि जंगल की तरफ काले घने बादल आ रहे हैं, अब बारिश होगी। इस पर सभी पशु-पक्षी वापस सुंदरबन आ गए। देखते ही देखते कुछ देर में खूब बरसात हुई। बरसात इतनी हुई कि वह दो-तीन दिन तक होती रही। सभी पशु पक्षी जब बरसात रुकने पर बाहर निकले तब उन्होंने देखा उनके तालाब और झील में खूब सारा पानी था। सारे पेड़ पौधों पर नए-नए पत्ते निकल आए थे। इस पर सभी खुशी हुए और सभी ने उत्सव मनाया। सभी का मन प्रसन्न था। बत्तख अब झील मैं तैर रहे थे। हिरण दौड़-दौड़कर खुशियां मना रहे थे और ढेर सारे पपीहे- दादुर मिलकर एक नए राग का अविष्कार कर रहे थे। इस प्रकार सभी जानवर, पशु-पक्षी खुश थे। अब उन्होंने दूसरे वन जाने का इरादा छोड़ दिया था और अपने घर में खुशी खुशी रहने लगे।

शिक्षा: धैर्य का फल मीठा होता है।

नोआखाली - एक व्यक्ति की विजयी सेना

'मेरी इच्छा मुसलमानों से अधिक सच्चा मुसलमान, हिंदुओं से अधिक अच्छा हिन्दू, ईसाइयों से अधिक अच्छा ईसाई और पारसियों से अधिक अच्छा पारसी बनने की है। मैं किसी को धर्म बदलने के लिए कहता ही नहीं। मेरा धर्म दुनिया के सभी धर्म शास्त्रों का पाठ करना स्वीकार करता है, वह बड़ा व्यापक धर्म है। प्रभु के, खुदा के अनेक नाम है, क्या हम कह सकते हैं सिर्फ राम ही उसका नाम है या सिर्फ रहीम ही उसका नाम है?' (पृष्ठ १३६)

धर्म का मुख्य उद्देश्य आत्मोत्थान है। अपने जीवनपथ को आलोकित कर उस सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान से तादात्म्य स्थापित करना ही इसका चरम लक्ष्य है। धर्म मैत्री और करुणा का पर्याय है, साम्राज्यवाद का द्योतक नहीं । परन्तु इतिहास साक्षी है कि साम्राज्य विस्तार के लिए धर्म को आयुध के रूप में बार बार व्यवहृत किया गया है। उत्तर पश्चिम से आने वाले आक्रांताओं का मूल उद्देश्य भूभारत में इस्लाम की विजयध्वजा लहराना या यहाँ के सभी निवासियों का धर्म परिवर्तन करवाना नहीं था। धर्म तो उपलक्ष्य मात्र था, गौण था, सबको संगठित करने का माध्यम था । मूल लक्ष्य था इस शस्य श्यामला उर्वर भूमि पर राज करना, हुकूमत करना, इसे हड़पना। इस देश की प्राकृतिक सम्पदाओं पर अपना आधिपत्य स्थापित करना। उन्हें भूमि चाहिए थी, उर्वर, हरित, धन-धान्य से परिपूर्ण, नदी नालों से सिंचित भूमि।

भक्ति काल के संत महात्माओं ने धर्म को शास्त्रीय और पोथिगत जटिलताओं से उन्मुक्त कर छुआछूत, वर्णभेद, जातिभेद, अस्पृश्यता आदि कुप्रथाओं पर कुठाराघात कर धर्म को 'सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय' का नवस्वरुप प्रदान किया। प्रेम और भक्ति को ही मुक्ति का मार्ग बताया, सर्वोपरि माना। देश को स्वाधीन हुए और गांधी जी की मृत्यु हुए लगभग 76-77 वर्ष बीत चुके हैं । आज तो गांधी जी के हत्यारे की जयगाथा भी गाई जाने लगी है, और गांधी की निंदा करना तो आम बात है। उन्हें अप्रासंगिक माना जाता है-ऐसे में क्या यह उपन्यास प्रासंगिक है? अवश्य है,-क्योंकि गांधी कभी भी अप्रासंगिक नहीं हो सकते हैं। उन पर जितने अधिक व्यंग्य विद्रूप के वाण कसे जाएंगे वह उतने ही अधिक प्रासंगिक हो

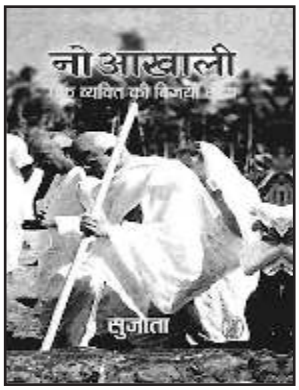

लेखिका
डॉ सुजाता चौधरी

प्रकाशक
वाणी प्रकाशन

मूल्य
₹350/-

उठेंगे । यह पुस्तक इसलिये आवश्यक है क्योंकि इसे पढ़ कर आज की पीढ़ी उस कालखंड के सत्य को जान समझ सकेगी। वे घृणा और सांप्रदायिकता की ज्वाला की विभीषिखा को समझ, उसकी आरक्त लपटों से अपनी और राष्ट्र की रक्षा कर पाएगी साथ ही धर्म के सत्य स्वरुप को भी आत्मसात कर पाएगी ।

नोआखाली के इस पाशिवक हिंसा और नरसंहार में कहाँ किसी तथाकथित साधु या मौलवी ने शान्ति दूत बनने का प्रयास किया? इस बहती रक्त गंगा को रोकने कौन आता ? अपने प्राण संशय में कौन रखता ? आएं तो केवल असाधारण और अद्‌भुत आत्मबल के तेज से उद्दीप्त एक वृद्ध अपने कुछ साथियों साथ जो अहिंसा और मानवप्रेम का ही गीत गाते । तभी तो गांधी जी के सहायक प्यारेलाल नैयर ने कहा – 'आसपास में दूर –दूर तक कोई साधु सन्त नजर नहीं आ रहे थे, जो ऐसे समय में इन्हें राह दिखाते। जान का भय किसे नहीं होता। जिन्हें सच्ची श्रद्धा नहीं उनके लिए अपने प्राण से बढ़कर भला और क्या चीज हो सकती है ? जिनके लिए साधु बनना एक व्यवसाय है भला उन्हें क्या पड़ी थी इन संकटों में पड़ने की ? वैसे लोग तो अखबारों में साक्षात्कार दे रहे थे और नफरत की आंधी को हवा दे रहे थे।' (पृष्ठ ७९)

उपन्यास में वर्णित एक प्रसंग अति महत्त्पूर्ण है। रामधुन गाते और हरिनाम संकीर्तन करते हुए ग्रामवासियों के साथ जब गांधी जी नंगे पाँव यात्रा कर रहे थे, तब कई स्थानों पर कुछ क्रोधित मुसलामानों के साथ उनका सामना हुआ। परन्तु गांधी जी की निर्भीकता, अदम्य साहस और उनके आनन से विच्छुरित होते आत्मबल के तेज के सामने उन सबका प्रतिरोध म्लान पड़ गया। यह प्रसंग पढ़ते हुए सहसा ही चौतन्य महाप्रभु का एक प्रसंग मानसपटल पर छा जाता है। जब नदिया में काजी ने सामुहिक हरिनाम संकीर्तन पर प्रतिबन्ध लगा दिया था तब गौरांग नवद्वीपवासियों साथ संकीर्तन करते हुए राजपथ पर अग्रसर हुए । गौरांग के अद्‌भुत साहस और दैवीय तेज के सामने काजी भी परास्त हुआ और अपना निर्णय बदल दिया।

नोआखाली के ग्रामांचलों में अपनी प्राथना सभाओं में गांधी जी कहते – 'आपका स्नेह और आदर खो जाने का खतरा उठाकर भी मैं यह कह देना चाहता हूँ कि आपकी अहिंसा एक कायर की मानी जायेगी, यदि वह सबल अंग्रेजों के विरुद्ध ही प्रयोग हो और अपने भाईयों कि खिलाफ हिंसा का उपयोग करें ।' (पृष्ठ २१)

नोआखाली के ग्रामांचलों में गांधी जी न केवल सांप्रदायिक प्रेम और सद्‌भाव कायम करने में तत्पर रहें, अपितु उन्होंने ग्राम सुधार पर भी जोर दिया । कभी अपने सहयोगियों को स्वच्छ पेय जल की आपूर्ति करने का निर्देश देते तो कभी पोखर – तालाबों की सफाई का निर्देश देतें और कभी स्वयं फावड़ा उठा लेते । शरणार्थी शिविरों के आस पास दुर्गन्ध और गन्दगी देख वह सिहर उठते । भग्न गृह और देवस्थानों के जीर्णोद्धार पर भी वह जोर देतें। जुयाग क्षेत्र के वकील हेमंत कुमार घोष, महात्मा के व्यक्तित्व से अभिभूत हो कर बाईस जलाशयों से युक्त अपनी बाईस एकड़ की सुविशाल भूमि उनको दान कर दी थी। इसी भूमि पर चारु चौधरी के तत्त्वावधान में 'अम्बिका कालीगंगा चौरिटेबल ट्रस्ट' के अंतर्गत गांधी आश्रम और प्राथमिक विद्यालय का निर्माण हुआ। अधिकतर विद्यार्थी कृषक, जुलाहे, मोची परिवार के थे, कुछ विद्यार्थियों के माता पिता उसी आश्रम में ही काम करते । ग्रामोन्नयन का यह प्रथम चरण था जिसकी नींव भी गांधी जी ने ही रखी । कलकत्ता, ढाका और आगरतला में पढ़ने वाले नोआखाली ग्रामांचल के युवकों से गांधी जी आग्रह करतें –'आपके गाँव की सड़कें टूटी फूटी हैं, सबसे पहले आप लोग फावड़े खुरपियों को लेकर आगे बढ़ें ...धीरे धीरे ग्रामवासियों को भी साथ लें ...' (पृष्ठ १३६)

आज, जब यह एक चलन सा बन गया है कि गांधी जी और नेताजी सुभाषचंद्र बोस को दो विपरीत मेरु पर अवस्थित कर दोनों के मध्य एक तुलनात्मक चारित्रिक विशलेषण कर, विरोधाभास की सृष्टि करना, तब विदुषी लेखिका ने बहुत ही विचक्षणता से कुछ संक्षिप्त प्रसंगों द्वारा दोनों विभूतियों के मध्य व्याप्त स्नेह और सम्मान के सम्बन्ध को अच्छे से दर्शाया है। नवीन पीढ़ी के लिए सत्य जानना समझना बहुत ही आवश्यक है । यह सच है कि गांधी जी और नेताजी के मध्य कुछ विषयों पर मतपार्थक्य था, मतानैक्य था परन्तु नेताजी ने सदैव ही गांधी जी का

सम्मान किया। कभी भी उनके विरुद्ध कोई अपशब्द नहीं कहे। आजाद हिन्द फौज के विघटन के पश्चात, नेताजी के कहने पर ही कर्नल जीवन सिंह जैसे कुछ सैनिक गांधी जी के साथ आ जुड़े। कर्नल जीव सिंह कहते हैं-'बापू, नेताजिओ आपको दुनिया का महानतम व्यक्ति कहते थे, इसी से आप जो कहेंगे वह अवश्य होगा।' (पृष्ठ 106)

नोआखाली के ग्रामीण भी गांधी जी से कहते हैं - नेताजी ने आपको 'देशेर जोनोक (जनक)' कहा है। और यह तो सभी जानते हैं कि, 6 जुलाई , 1944 में बा की मृत्यु पर शोक ज्ञापन करते हुए सिंगापुर आकाशवाणी से नेताजी ने ही गांधी जी को 'बापू' सम्बोधित किया था।

उपन्यास में वर्णित एक संक्षिप्त प्रसंग है- नोआखाली प्रवास में गांधी जी का स्थानीय अनुसूचित जाति, नमोशुद्रों के साथ सम्बन्ध स्थापित करना। गांधी जी नमोशूद्र जाति के महानन्द वैद्य का आतिथ्य स्वीकार कर उनके घर ठहरे। हर्षोत्फुल्ल महानन्द कहते हैं 'बापू जी ने हम गरीब के घर ठहर कर हमारे घर को पवित्र बना दिया है। क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, नमोशूद्र-नमोशूद्र कहकर आज तक सभी ने घृणा की है ....' (पृष्ठ 143) यह प्रसंग महत्त्पूर्ण है क्योंकि संख्याबहुल नमोशूद्र, मतुआ संघ के छत्रतले संयोजित थे और इनकी कुछ मान्यताएं और संस्कार तथाकथित हिन्दुओं से थोड़े भिन्न भी थे ।कई विद्वानों का मानना है कि भाषागत समस्या या अन्य कारणवश गांधी जी इन स्थानीय संख्याबहुल नमोशूद्र जाति से अधिक संपर्क नहीं स्थापित कर पाये थे। नोआखाली नरसंहार और देश विभाजन के पश्चात लगभग सम्पूर्ण मतुआ महासंघ ही पूर्वी बंगाल से शरणार्थी के रूप में धीरे धीरे पश्चिम बंगाल के उत्तर 24 परगना जिले के हाबड़ा, बनगांव, ठाकुरनगर क्षेत्र में आ बसे। आज भी ब।। और छल्ब के नाम यह जाति कुटिल राजनीतिक चालों का शिकार बन रही है। गाँधी जी का यह वक्तव्य ष्सत्ता के लिए, धर्म की आड़ सदियों से ली जा रही है और आज भी एक बार उसी धर्म की आड़ में इतने जघन्य अपराध और कुकृत्य हो रहे हैं'(पृष्ठ 41) -आज भी कितना प्रासंगिक है।

गांधी जी की धर्मनिरपेक्षता की भावना उनके अत्यधिक धार्मिक विश्वास और आध्यात्मिकता का ही परिणाम था। उनकी धर्मनिरपेक्षता वामपंथियों जैसी न थी, क्योंकि इश्वर के अस्तित्व पर उन्हें पूर्ण विश्वास था। जीवन के अंतिम वर्षों में उनकी धर्मनिरपेक्षता की भावना अत्यंत तीव्र व कट्टर हो चुकी थी। उनका यह मानना था कि नोआखाली का शांति रक्षा अभियान दरअसल उनकी अपनी अग्निपरीक्षा है, उनके अहिंसा के सिद्धांत की परिक्षा। जिस अहिंसा और धर्मनिरपेक्षता के पंथ पर उन्हें इतना विश्वास था यदि उसी मार्ग द्वारा वह नोआखाली की जनता को शांत न कर पाएं, उनके आक्रोश, उनके दुखों को दूर न कर पाएं तो यह उन्हीं के विश्वास की हार होगी - यह अहिंसा अर्थहीन बन जाएगी। अतः उन्होंने अपने प्राण भी संकट में डाल दिए। उनकी धर्मनिरपेक्षता की भावना ने धर्म के सार्वभौमिक रूप को उजागर किया -जिसका प्रथम सोपान अवश्य ही 'अंतस केंद्रित' होता है क्योंकि धर्म नितान्त ही व्यक्तिगत विषय है, व्यक्तिगत अनुभूति है। धर्म का सांगठनिक रूप तभी स्वीकार्य और उचित है जब उसमें आग्रासन की भावना न हो, साम्राज्यवाद का लोभ न हो वरन प्रेम, भक्ति, समानता और सर्वजन कल्याण की भावना मुख्य हो जैसा कि चौतन्य महाप्रभु, भक्त शिरोमणि मीरा, अन्यान्य भक्ति और सूफी संतों का पथ था।

प्रांजल भाषा शैली में लिखा यह अत्यन्त पठनीय और सूचनाप्रद उपन्यास स्वाधीनता संग्राम के शेष लग्न के राजनीतिक उथल पुथल को दर्शाता है और साम्रदायिक सद्भावना और ऐक्य बनाये रखने में गांधी जी की भूमिका को अत्यन्त गहराई से दर्शाता है।

संपर्कः
गुरु गोविन्द सिंह अपार्टमेंट, ब्लॉक - बी
50 बी. एल. घोष रोड, बेलघड़िया, कोलकाता-700057
पश्चिम बंगाल
मो.: 8902226567

गांधी क्विज-2

1. **ये कथन किसने कहा 'ऐसे जियो जैसे कि तुम कल मरने वाले हो. ऐसे सीखो की तुम हमेशा के लिए जीने वाले हो'**
   क. महात्मा गांधी
   ख. पंडित जवाहर लाल नेहरू
   ग. लाल बहादुर शास्त्री
   ध. सरोजिनी नायडू
2. **अंतर्राष्ट्रीय अहिंसा दिवस कब मनाया जाता है?**
   क. 14 अगस्त
   ख. 16 मई
   ग. 8 अक्टूबर
   ध. 2 अक्टूबर
3. **महात्मा गांधी ने "Unto This Last" को गुजराती में अनुवाद करने पर शीर्षक को क्या नाम दिया था?**
   क. मानवता
   ख. सदभावना
   ग. सर्वोदय
   ध. अहिंसा
4. **महात्मा गांधी का जन्म किस स्थान पर हुआ था?**
   क. पोरबंदर
   ख. मध्यप्रदेश
   ग. कर्नाटक
   ध. आंध्रप्रदेश
5. **गांधी जी का नाम निम्नलिखित में से किस नारे से जुड़ा है?**
   क. करो या मरो
   ख. तम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूंगा
   ग. स्वराज मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है
   ध. जय हिंद
6. **महात्मा गांधी और उनके स्वयंसेवकों ने दांडी मार्च कब शुरू की थी?**
   क. 1928
   ख. 1930
   ग. 1931
   ध. 1933
7. **महात्मा गांधी और उनके स्वयंसेवकों ने साबरमती आश्रम से दांडी तक की यात्रा को कितने दिनों में तय किया था?**
   क. 24
   ख. 20
   ग. 21
   ध. 17
8. **साबरमती आश्रम कहाँ पर स्थित है?**
   क. राजकोट
   ख. अहमदाबाद
   ग. पठानकोट
   ध. बड़ौदा
9. **निम्नलिखित में से कौन सी पुस्तक महात्मा गांधी द्वारा लिखी गई है?**
   क. सत्य के साथ मेरे प्रयोगों की कहानी (The Story of My Experiments with Truth)
   ख. हिंद स्वराज (Hind Swaraj)
   ग. सत्याग्रह (Satyagraha)
   ध. उपरोक्त सभी
10. **निम्नलिखित में से कौनसा आन्दोलन भारत में महात्मा गांधी का पहला आंदोलन था?**
    क. चंपारण सत्याग्रह
    ख. बारदोली सत्याग्रह
    ग. दांडी मार्च
    ध. खेड़ा सत्याग्रह

नोट: आप गांधी क्विज के उत्तर antimjangsds@gmail.com पर भेज सकते हैं। प्रथम विजेता को उपहार स्वरूप गांधी साहित्य दिया जायेगा।

बच्चों के लिए पहेली

(उत्तर इसी अंक में कहीं छिपे हुए हैं)

1. आसमान से आकर तुम्हें भिगाती,
   जंगल खेत हरे बनाती,
   किंतु ज्यादा आ जाऊँ तो,
   बहुत भारी तबाही मचाती।

2. हर जगह मैं रहती हूँ,
   फिर भी मुझको देख ना पाओगे,
   बहुत जरूरी चीज हूँ,
   बिन मेरे जी ना पाओगे।

3. चार पाँव होते हैं मेरे,
   फिर भी चलती नहीं हूँ मैं,
   और कुछ ना सही,
   आराम तो देती हूँ मैं।

4. बीमार नहीं हूँ,
   फिर भी लेती हूँ गोली,
   उगल दूँ गोली,
   तो कर दूँ अनहोनी।

5. कमर कसकर रोज सवेरे
   चलाते हो मुझे,
   तभी तो अपने घर को
   साफ बनाते हो तुम।

6. कपड़े पर कपड़ा,
   परत पर परत,
   हूँ खाने की चीज,
   पर काटते समय रो।

7. सुबह आता शाम को जाता,
   दिन भर हमें राह दिखाता,
   इसकी ऊर्जा के बल बूते ही,
   धरती पर जीवन चल पाता।

8. वैसे तो हूँ मैं हरी,
   लेकिन रंग होता है लाल,
   महिलाओं की चहेती,
   सुंदर बनाऊँ उनके हाथ।

9. बना था मैं बातों के लिए,
   करता अब बहुत से काम,
   मम्मी कहती रहतीं तुमसे,
   थोड़ी देर दो मुझे आराम।

10. उँगलियाँ हैं पाँच मेरी,
    किंतु हाथ नहीं हूँ,
    पहन लो मुझे तो,
    ठंड से बचा लेता हूँ।

गतिविधियाँ

दीन दयाल उपाध्याय कॉलेज के छात्रों की कार्यशाला

दिल्ली विश्वविद्यालय के दीन दयाल उपाध्याय कॉलेज के शिक्षकों सहित 75 विद्यार्थियों ने गांधी स्मृति संग्रहालय का दौरा किया। इस दौरान उन्होंने गांधी स्मृति में आयोजित ओरिएंटेशन कार्यक्रम में भी भाग लिया। समिति के शोध अधिकारी डॉ सौरव राय ने छात्रों को गांधीजी के जीवन और दर्शन की जानकारियाँ दीं। इस अवसर पर गाइड श्री यतेंद्र, श्री कृष्ण, सुश्री नेहा और श्री दीपक द्वारा विद्यार्थियों को संग्रहालय का अवलोकन करवाया गया। उत्साहित विद्यार्थियों ने गांधी प्रश्नोत्तरी में भी हिस्सा लिया। छात्रों को भेंटस्वरूप गाँधी स्मृति की मासिक पत्रिका 'अंतिम जन' की प्रतियां दी गईं।

विभिन्न स्कूलों के विद्यार्थियों ने समझी गाँधी की शिक्षाएं

गाँधी स्मृति एवं दर्शन समिति की पहल 'टेकिंग गाँधी टू स्कूल' के तहत अनेक स्कूलों के विद्यार्थियों ने गाँधी स्मृति और गाँधी दर्शन का अवलोकन किया। स्कूली बच्चों को समिति के गाइड ने महात्मा गाँधी की शिक्षाओं और सिद्धांतों से अवगत करवाया।

एंबिएंस पब्लिक स्कूल सफदरजंग एन्क्लेव के 70 छात्रों और चार 4 शिक्षकों ने 4 अप्रैल, को गांधी स्मृति का दौरा किया। इस अवसर पर विद्यार्थियों ने महात्मा गांधी की शहादत स्थल का भी दौरा किया। विद्यार्थियों के लिए गांधी प्रश्नोत्तरी का आयोजन किया गया जिसमें विद्यार्थियों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया।

डीएवी पब्लिक स्कूल, पश्चिम विहार के दस शिक्षकों के साथ 319 छात्रों ने 18 अप्रैल को गांधी स्मृति संग्रहालय का दौरा किया।

ग्रेटर नोएडा के प्रज्ञान स्कूल के 54 छात्रों और तीन शिक्षकों ने टेकिंग गांधी टू स्कूल कार्यक्रम के हिस्से के रूप में 18 अप्रैल को गांधी स्मृति संग्रहालय का दौरा किया इस अवसर पर आयोजित गांधी प्रश्नोत्तरी में भी उत्साही बच्चों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। भाग लेने वाले प्रत्येक बच्चे को समिति की मासिक पत्रिका अंतिम जन की एक प्रति दी गई।

इसके अतिरिक्त ब्रेन इंटरनेशनल स्कूल, विकासपुरी के लगभग 300 छात्रों और 30 शिक्षकों ने 27 अप्रैल को गांधी स्मृति संग्रहालय का दौरा किया महाराजा अग्रसेन पब्लिक स्कूल, अशोक विहार के 98 छात्रों और 8 शिक्षकों ने 27 अप्रैल, 2024 को गांधी दर्शन, राजघाट स्थित संग्रहालय का दौरा किया। इस यात्रा के दौरान शिक्षकों को अंतिम जन पत्रिका की प्रतियां भी दी गई। समर फील्ड्स स्कूल, कैलाश कॉलोनी के आठ शिक्षकों के साथ 193 छात्रों ने 30 अप्रैल, 2024 को गांधी स्मृति का दौरा किया। समिति के शोध अधिकारी डॉ. सौरव राय और श्री राजदीप पाठक ने बच्चों से चर्चा की और उन्हें गांधी स्मृति की ऐतिहासिक प्रासंगिकता के बारे में जानकारी दी। उत्साही छात्रों ने मल्टी-मीडिया संग्रहालय भी देखा और महात्मा गांधी के कमरे का अवलोकन किया।

विदेशी प्रतिनिमंडल ने जाना गाँधी को

भारत दौरे पर आये यूनाइटेड स्टेट्स नेवल वॉर कॉलेज (यूएसएनडब्ल्यूसी) के अधिकारियों के परिजनों ने 12 अप्रैल, 2024 को गांधी स्मृति का दौरा किया। प्रतिनिधिमंडल में यूएसएनडब्ल्यूसी के अध्यक्ष रियर एडमिरल पीटर ए गार्विन की पत्नी श्रीमती चेरिल लिन गार्विन, एडमिरल निर्मल के वर्मा (सेवानिवृत्त) की पत्नी श्रीमती मधुलिका वर्मा, इंटरनेशनल फेलो, श्रीमती एमी पार्कर मैंगोल्ड शामिल थे। थॉमस एडवर्ड मैंगोल्ड, डीन, अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्रम यूएसएनडब्ल्यूसी और श्रीमती बेली पेगे सेडलैक भी शामिल थीं।

14 सदस्यीय वियतनामी प्रतिनिधिमंडल ने 22 अप्रैल को गांधी स्मृति का दौरा किया। इस यात्रा के दौरान, उन्होंने शहीद स्तंभ देखा और महात्मा गांधी के कमरे का भी दौरा किया।

जाम्बिया गणराज्य के उच्चायोग की प्रथम सचिव, सुश्री ओलिविया न्याचिउ ने 24 अप्रैल, 2024 को गांधी स्मृति का दौरा किया। सुश्री मैरी नान्यांगवे, तृतीय सचिव (उच्चायुक्त के निजी सचिव) और सुश्री अंजू वडेहरा सुश्री ओलिविया के साथ थीं।

गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति

हमारे आकर्षण

गांधी स्मृति म्यूजियम (तीस जनवरी मार्ग)

* गांधी स्मृति म्यूजियम
* डॉल म्यूजियम
* शहीद स्तंभ
* मल्टीमीडिया प्रदर्शनी
* महात्मा गांधी के पदचिन्ह
* महात्मा गांधी का कक्ष
* महात्मा गांधी की प्रतिमा
* वर्ल्ड पीस गोंग

गांधी दर्शन (राजघाट)

* गांधी दर्शन म्यूजियम
* क्ले मॉडल प्रदर्शनी
* गेस्ट हाउस और डॉरमेट्री (200 लोगों के लिये)
* सेमीनार हॉल (150 लोगों के लिये)
* कॉन्फ्रेंस हॉल (300 लोगों के लिये)
* प्रशिक्षण हॉल : (80 लोगों के लिये)
* ओपन थियेटर
* राष्ट्रीय स्वच्छता केन्द्र
* गेस्ट हाउस और डॉरमेट्री

(डॉ. ज्वाला प्रसाद)
निदेशक

प्रवेश निःशुल्क (प्रातः 10 बजे से सायः 6.30 बजे तक), सोमवार अवकाश
हॉल व कमरों की बुकिंग के लिये संपर्क करें- ईमेलः 2010gsds@gmail.com, 011-23392796

gsdsnewdelhi www.gandhismriti.gov.in

RNI NO. DELHIN/2018/76242

''आप मुझे जो सजा देना चाहते हैं, उसे
कम कराने की भावना से मैं यह बयान नहीं
दे रहा हूँ। मुझे तो यही जता देना है कि
आज्ञा का अनादर करने में मेरा उद्देश्य कानून
द्वारा स्थापित सरकार का अपमान करना
नहीं है, बल्कि मेरा हृदय जिस अधिक बड़े
कानून से-अर्थात अन्तरात्मा की आवाज को
स्वीकार करता है, उसका अनुसरण करना ही
मेरा उद्देश्य है।''

(मोहनदास करमचंद गांधी)

गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति, नई दिल्ली
(एक स्वायत्त निकाय, संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार)

प्रकाशक - मुद्रक : स्वामी गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति के लिए पोहोजा प्रिंट सोल्यूशंस प्रा. लि., दिल्ली - 110092
से मुद्रित तथा गांधी दर्शन, राजघाट, नई दिल्ली-110092 से प्रकाशित।